मूल्य : पच्चीस रुपए (25.00)

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 द्वारा प्रकाशित
MERE MARNE KE BAAD (Novel)
by Shrawan Kumar Goswami

मेरे मरने के बाद

श्रवणकुमार गोस्वामी



राजपाल एण्ड सन्ज़

एक

उस दिन कुछ ज्यादा ही गर्मी पड रही थी। सूरज की तीखी किरणें शरीर को झुलसा-झुलसा जाती थी। ऐसा लग रहा था कि मनोहर किसी धधकती हुई भट्ठी के भीतर से होकर चला जा रहा था। ऐसी प्रचंड गर्मी मे आज कोई रिक्शा भी नही मिल सका। गर्मी के कारण कही-कही सड़क का अलकतरा पिघलकर पचपचा-सा गया था। रह-रहकर जूतों के तले के निशान अलकतरे पर उभर जाते थे। कभी-कभी तो जूते अलकतरे से चिपक भी जाते थे और तब थोड़ा जोर लगाकर कदम उठाने की जरूरत पड़ जाती थी। रास्ते पर हर दिन घूमने वाले आवारा कुत्ते कही नजर नही आ रहे थे। शायद वे भी कही दुबके पडे थे।

सामने केवल पीपल का पेड नजर आ रहा था।

पीपल के नीचे पहुंचकर मनोहर ने राहत की एक सास ली। वह चबूतरे पर बैठ गया। पीपल की पत्तियां बिलकुल शांत एव गतिहीन थी। कही से भी हवा नही आ रही थी। सिर पर लिपटे हुए तौलिये को मनोहर ने खोला और चेहरे पर फैल आये पसीने को रगड़कर पोंछा। अनायास ही उसके मुख से निकल पड़ा—"बाप रे बाप ! कैसी सड़ी गर्मी पड रही है !"

तौलिया उसने अपने कधे पर डाल दिया। एकाएक ऐसा लगा कि पीपल की पत्तियां हिलने-डुलने लगी है और शीतल बयार बहने लगी है। पत्तियों के हिलने से सायं-सांय की हल्की आवाज भी होने लगी। मनोहर ने खुश होते हुए ऊपर की ओर नजर उठाकर देखा और वह एक अज्ञात भय से काप उठा। उसके सिर के ऊपर पीपल की जो डाली थी, केवल इसकी पत्तियां ही हिल-डुल रही थी। बाकी पत्तिया स्पन्दनहीन एवं स्थिर थी। यह देखकर मनोहर डर गया और वह एकाएक चबूतरे से उठ खड़ा हुआ। उसी समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी ने उसके कंधे पर अपना हाथ रख दिया है और वह मनोहर के कंधे को हौले-हौले दबा रहा है ताकि वह फिर बैठ जाये। उसे ऐसा लगा कि उसके पीछे कोई खड़ा है। लेकिन मनोहर की हिम्मत नही हो रही थी कि मुड़कर वह पीछे की ओर देख भी पाता। देखते-ही-देखते वह पसीने से नहा उठा और बार-बार अपने तौलिये से पसीना

पोंछने लग गया। वह कुछ बोल भी नहीं पा रहा था।

अचानक एक आवाज सुनायी पड़ी—"मनोहर, डरो मत। बैठ जाओ।"

आवाज जानी-पहचानी लगी। मनोहर के मुंह से अनायास ही निकल पड़ा—"कौन? कृष्णकांतजी?"

"हां, मैं ही हूं।"

उत्तर सुनकर मनोहर ने अपनी गर्दन को पीछे की ओर मोड़ा। उसे कहीं कोई नजर नहीं आया। उसने मन-ही-मन दुहराया—"कृष्णकांतजी तो लगभग दो वर्ष के पहले ही मर गये थे, फिर यह कैसी आवाज है?"—फिर क्या था मनोहर डर के मारे कांपने लगा। वह वहां से भाग जाने का साहस बटोरने लगा। उसने एक कदम आगे बढ़ाया भी, पर उसे लगा किसी ने उसे पीछे की तरफ खींच लिया है। वह अपने कंधे पर अभी भी किसी के भारी हाथ का दबाव महसूस कर रहा था। वह जहां-का-तहां स्तम्भित-सा खड़ा रह गया।

"मनोहर, डरो मत। मैं कृष्णकांत ही हूं।"—फिर वही आवाज सुनाई पड़ी।

"लेकिन · लेकिन···"—मनोहर मुश्किल से बोल पा रहा था—"लेकिन·· आप तो मर चुके हैं—दो बरस पहले ही···"

"हां, मैं मर चुका हूं। यह सच है। पर मेरी आत्मा तो भटक रही है। मैं वही आत्मा हूं।"—फिर आवाज आयी।

यह सुनते ही मनोहर बदहवास-सा हो उठा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? उसकी घिग्घी बंध गयी। अब वह गूंगे की तरह खड़ा था। वह कुछ बोलना चाह रहा था, पर उसकी बोली फूट नहीं रही थी।

"मनोहर, डरो मत। बैठ जाओ।"—फिर वही आवाज सुनायी पड़ी।

मनोहर आज्ञाकारी बालक के समान चुपचाप चबूतरे पर बैठ गया। उसे ऐसी प्रतीति हुई कि किसी ने उसके तौलिये को कंधे से खींच लिया है और उसने उसी तौलिये से मनोहर के चेहरे पर फैल आये पसीने को पोंछना शुरू कर दिया है। ऐसा करने के बाद उस अदृश्य ने तौलिया मनोहर के कंधे पर टिका दिया। अब वह मनोहर के सामने हवा करने लगा। देखते-ही-देखते मनोहर सामान्यावस्था में आ तो गया, मगर भय अभी भी उसके मुखड़े पर नाच रहा था।

"मनोहर, डरो मत। डरने की बात नहीं है। मैं तुम्हें जरा भी तंग नहीं करूंगा। तुम ऐसे ही बैठे रहो।"—कृष्णकांतजी की ध्वनि थी।

"आप दिखायी क्यों नही पड़ते ?"—बड़े साहस के साथ मनोहर ने पूछा।

"यह मेरी सीमा है कि मैं तुम्हारे सामने प्रकट नहीं हो सकता। सच तो यह है कि मैं तुम्हारे ही सामने खड़ा हूँ। यह तो तुम्हारी ही विवशता है कि तुम मुझे देख नहीं सकते। पर, तुम मुझे सुन सकते हो। तुम मुझे अनुभव कर सकते हो।"—कृष्णकान्तजी का स्वर पुनः सुनायी पड़ा।

"पर मुझे तो बड़ा डर लग रहा है।"—मनोहर ने सहमते हुए कहा।

"मनोहर, तुम बिलकुल मत डरो। मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं करूँगा।"

"मैं कैसे विश्वास करूं?"

"मनोहर, अब मैं मनुष्य नहीं। मैं भटकती हुई आत्मा हूं। झूठ बोलना मनुष्यों का काम है। आत्मा झूठ नहीं बोला करती।"

यह सुनकर मनोहर आश्वस्त हो उठा फिर भी उसने उतावली के साथ पूछा—"तो क्या अब मैं अपने घर जा सकता हूं ?"

"नहीं।"—एक कठोर स्वर सुनायी पड़ा।

"तो ?"

"मैं तुम्हें कई दिनो से रोकना चाह रहा था। आज तुम अकेले मिल गये, अतः मैंने तुम्हें रोक लिया है।"

"क्यों ?"

"बताता हूं।"—कृष्णकांतजी की यह आवाज सुनायी पड़ी और कुछ क्षणों के लिये कुछ भी सुनायी नहीं पड़ा।

मनोहर और भी घबरा उठा।

कुछ देर के बाद एक उदास स्वर उभरा—"मनोहर, मैंने तुम्हें रोका है। इससे तुम्हें थोड़ी दिक्कत भी हुई है। तुम भयभीत हुए और भय के कारण तुम्हें कष्ट हुआ। इसके लिए मैं तुमसे क्षमा चाहता हूं। मैं तुम्हें यह आश्वासन पुनः देना चाहता हूं कि मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं करूंगा। मनोहर, सुन रहे हो न मेरी बातें ?"

"जी।"—मनोहर इससे अधिक उच्चरित नहीं कर सका।

"अब सुनो कि मैंने तुम्हें क्यों रोका है···आज। मेरे मरे दो साल गुजर गये। जिस दिन मैं मरा, उसी दिन से मेरी आत्मा भटक रही है। तुम अच्छी तरह जानते हो कि जब तक मैं जीवित रहा मैं जिन्दगी से संघर्ष [illegible] रह गया। शायद संघर्ष ही मेरा जीवन था। मुझे खुशी है कि [illegible] मैं खेत भी आया। लेकिन इस संघर्ष से मुझे जो हासिल [illegible] छिपा नहीं है। इस संघर्ष के दौरान मैंने मनुष्यों के [illegible]

छिपे अनेक परतों वाले चेहरों को बार-बार देखा और उन्होंने मुझे बार-बार छला भी। मैं जीवन में बराबर छला गया। मगर, मैंने कभी हार नहीं मानी। क्यों तो छला जाकर भी कहीं-न-कहीं मैं अपने को खुश ही पाता रहा था। शायद यही कारण है कि छले जाने की त्रासदी का शिकार मैं कभी नहीं हुआ। लेकिन, मनुष्य के मेरे सामने जो तरह-तरह के घिनौने रूप आये, वे बड़े भयानक थे। मैं उन रूपों से भी कभी नहीं डरा या घबराया। मनोहर, मेरी बातें सुन रहे हो न?"

"जी, सुन रहा हूं।"—इससे अधिक मनोहर बोल भी नहीं सकता था, क्योंकि अभी भी वह डरा-डरा-सा था।

"मैं खुश हूं कि मैं जीवन भर लेखक बना रह सका। मैं चाहता तो अपने लेखक को छोड़कर मैं कुछ भी बन सकता था, पर मैंने ऐसा नहीं किया। सम्भवत: मैं ऐसा कर भी नहीं सकता था। साठ वर्ष की उम्र तक मैं लिखता रह गया। मैंने साहित्य की सेवा की—हिन्दी की सेवा की। इस साहित्य-सेवा के एवज में मुझे दु:ख-दर्द, अपमान, उपेक्षा, दरिद्रता और कटु आलोचनाओं के पुरस्कार मिले। इन सबके बावजूद लेखन को एक महान् कार्य मानकर मैं लिखता रहा और समाज को मैं जो दे सकता था···देता रहा। पर, तुम्हारे समाज ने मुझे उतना भी नहीं दिया कि मैं अपने परिवार का उचित भरण-पोषण भी कर पाता।"

यह बोलते-बोलते कृष्णकांतजी की आवाज में गीलापन आ गया और उनका बोलना कुछ क्षणों के लिए थम गया। मनोहर ने ही टोका—"कृष्णकांतजी, आप रुक क्यों गये···बोलते-बोलते?"

"बस, यों ही जरा चुप हो गया था। मनोहर, तुम्हें तो पता है कि मैं अपने पीछे परिवार में पांच सदस्य छोड़कर मरा। मेरे दो बेटे हैं। मैंने इन बेटों की परवाह कभी नहीं की। पर, मेरी दो जवान बेटियां हैं, जिनके लिये चिन्ता मुझे बराबर सताती थी। एक थी, मेरी पत्नी जिसे जीवन में कभी भी कोई सुख नसीब नहीं हो सका। उसके ऊपर दो-दो जवान बेटियों की शादी का भार था। वह कैसे इन लड़कियों का विवाह कर पायेगी—यह सोच-सोच कर मैं परेशान हो जाया करता था।"

कृष्णकांतजी का बोलना पुन: रुक गया। एक हल्की-सी आवाज हुई जिससे पता चला कि कृष्णकांतजी की आंखें भर आयी होंगी, जिन्हें पोंछने के लिए उन्होंने बोलना बंद कर दिया था।

"मनोहर, छोड़ो इन बातों को। ये बातें तो तुम्हें मालूम ही हैं। मरने के बाद पिछले दो वर्षों से मेरी आत्मा भटक रही है। इन दो वर्षों में मैंने यह देखा है—जो मैंने जीते जी साठ वर्षों के दौरान कभी नहीं देखा था।

इन दो सालों मे मैंने जाना कि आदमी से ज्यादा खतरनाक जीव संसार मे दूसरा कोई नही। तुमने किसी कुत्ते को कुत्ते का मांस खाते हुए कभी नही देखा होगा, लेकिन यह आदमी, आदमी का भी मांस खाने मे तनिक भी संकोच नही करता। मनुष्य से बढकर हिंसक दुनिया में दूसरा कोई प्राणी नही। दूसरे जीव तो जब किसी को मारते हैं, तो वहां खून बहता दिखायी पडता है। मगर, आदमी तो आदमी को ऐसे मारता है कि खून बहने की बात तो दूर, मार के निशान भी दिखायी नही पडते और काम तमाम हो जाता है।"

कृष्णकांतजी की आवाज पुनः गीली हो चली थी।

मनोहर मंत्र-मुग्ध-सा सुनता चला जा रहा था, फलतः उसके भीतर का भय भी कही गायब हो गया था। बातचीत को आगे बढ़ाने की गरज से उसने कहा—"लगता है, मृत्यु के बाद आप कही ज्यादा आहत हुए हैं?"

"हां, मनोहर, मृत्यु के बाद मैं कही ज्यादा आहत हुआ हूं। मृत्यु के पश्चात् मुझे जो घाव मिले है, वे ही तो मुझे चैन नही लेने दे रहे हैं। उन घावों के कारण ही मेरी आत्मा आज भी भटक रही है। मेरी आत्मा की यह भटकन समाप्त हो—अब मैं यही चाहता हूं।"

"आपकी आत्मा की यह भटकन कैसे समाप्त हो सकती है?"—मनोहर बगैर सोचे-समझे यह सवाल पूछ बैठा।

"मनोहर, मरने के बाद क्या होता है—यह कोई नही जानता। शायद इसी कारण किसी के मरने के बाद लोग उसकी बची-खुची गठरी तक छीन लेने की कोशिश करते हैं। वे ऐसा निर्भय होकर करते है। ऐसा करने वाले सोचते हैं कि जो मर गया, वह अब लौटकर तो आ सकता नही। वह लौटकर नही आ सकता, इसलिये उसके परिवार वालों को जितना भी सताया जाना संभव है, सताओ। मरने वाले के नाम को जहां तक भुनाना संभव है, भुनाओ।

मेरे साथ पिछले दो वर्षों से यही होता आ रहा है। लोग इस फिराक मे थे कि मेरी विधवा और मेरी बेटियाँ बेघर हो जायें। मरने के बाद साहित्य-जगत् में कृष्णकांत एकाएक अमूल्य बन गया है। अब लोगों को उसके लेखन में खूबियां और खूबियां ही नजर आ रही है। जो लोग कल तक मेरे निन्दक और विरोधी थे, वे आज मेरे समर्थन में नयी-नयी पैंतरेबाजी करने लगे हैं। अब मेरी रचनाओं का पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है। लोग मुझ पर शोध कर रहे हैं। कल का नकारा कृष्णकांत मरने के बाद अचानक महान् बन गया है और लोग उसे साहित्य और राजनीति की मंडियों मे ऊंची कीमतों पर बेचने की तैयारी में लग गये है। ये

मेरी आत्मा को साल रही हैं। मैं ऐसे लोगों को बेनकाब करना चाहता हूं।"

"कृष्णकांतजी, आप एक सफल लेखक हैं। आप इनके खिलाफ क्यों नहीं लिखते? आपको तो लिखना चाहिये।"—मनोहर ने ललकारते हुए कहा।

"मनोहर, यही तो अब मैं नहीं कर सकता। अब मैं मनुष्य नहीं, मनुष्य की भटकती हुई आत्मा हू। तुम्हारी दुनिया में मनुष्य नामक जीव की बात सुनी जाती है। वहाँ आत्मा की बात की कोई कीमत नहीं, उसे यहाँ सुनने के लिये कोई तैयार नहीं। अगर मैं लिख भी लूं तो उसे छापेगा कौन?"

"हां, यह समस्या तो है।"—मनोहर ने हामी भरी।

"और जब तक मैं अपने मरने के बाद की व्यथा को अभिव्यक्त नहीं कर देता, मेरी आत्मा इसी प्रकार भटकती रहेगी।"—कृष्णकांतजी का स्वर उदास होने लगा था।

"क्या मैं आपके किसी काम आ सकता हूं?"—मनोहर ने सहमते हुए पूछा।

"हां"—कृष्णकांतजी ने पुलकित होते हुए कहा—"मुझे तुमसे ही आशा है। तुम चाहो तो मेरी आत्मा की भटकन रुक सकती है।"

"वह कैसे?"—मनोहर ने ताज्जुब के साथ पूछा।

"मेरे मरने के बाद से अब तक जो नाटक होता चला आ रहा है, उसे मैं लिखवा देना चाहता हू। ऐसा कर मैं अपनी आत्मा के बोझ को हल्का कर सकूंगा। जिस दिन यह काम पूरा हो जायेगा, मेरी आत्मा मुक्त हो जायेगी और उसकी भटकन भी बंद हो जायेगी।"

"आपकी इस इच्छा की पूर्ति में मैं किस प्रकार का सहयोग दे सकता हूं?"—मनोहर ने जानना चाहा।

"मनोहर, मेरे प्रिय मनोहर, तुम मेरी सहायता कर सकते हो। सच्ची बात तो यह है कि केवल तुम ही मेरी सहायता कर सकते हो।"—कृष्णकांतजी की विह्वल वाणी सुनायी पड़ी।

"वह कैसे?"—मनोहर ने जानना चाहा।

"मनोहर, यदि हर दिन तुम मुझे केवल एक घंटे का समय दे सको तो मेरा यह काम पूरा हो जायेगा। अभी तो तुम्हारी गर्मी की छुट्टियां भी चल रही हैं?"

"जी।"

"क्या मेरे लिये समय निकाल सकोगे?"

"कब?"

"हर दिन इसी समय।"

"याने दोपहर को।"

"हां मनोहर, यही समय ठीक रहेगा। इस समय चारों ओर सन्नाटा भी रहता है।"

"क्या करना होगा मुझे ?"

"मैं बोलूंगा और तुम लिखते चलोगे।"

"प्रतिदिन कितना समय देना होगा ?"

"यही कोई एक घंटा।"

"पर, आप जो लिखवायेंगे, उसका मैं क्या करूंगा ?"—मनोहर ने एक सवाल पूछा।

"मनोहर, तुम जो लिखोगे···तुम जो लिखोगे···वह एक ऐसी रचना होगी···"—बोलते-बोलते कृष्णकांतजी की आवाज अटक गयी।

"कैसी रचना होगी, कृष्णकांतजी ?"—मनोहर ने उत्सुकता के साथ पूछा।

"अब मैं अपने ही मुंह से कैसे कह सकता हूं कि वह किस प्रकार की रचना होगी। हां, इतना जरूर कह सकता हूं वह अपने आप में एक नयी चीज होगी।"

"मैं उस रचना का क्या करूंगा ?"—मनोहर ने सीधा सवाल किया।

"वह रचना तुम छपवाओगे। वह रचना तुम्हारे नाम से छपेगी।"—कृष्णकांतजी की उक्ति थी।

"यदि उसे कोई नही छापना चाहे, तो ?"—मनोहर ने शंका प्रकट की।

"मनोहर, तुम्हें मैं तुम्हारे बचपन से जानता हूं। मैं तुम्हारी प्रतिभा का शुरू से कायल रहा हूं। मैं यह भी जानता हू कि इस बीच साहित्य-जगत् मे तुमने अपनी एक जगह बना ली है। मैं यह अच्छी तरह जानता हू कि तुम्हारी लेखनी कितनी प्रखर है। तुम लिखो और वह न छपे—यह मेरे मानने की बात नही है।"

"कृष्णकांतजी, यह तो आपके हृदय मे मेरे लिये जो स्नेह है—बोल रहा है।"—मनोहर ने हँसते हुए कहा।

"जो सच है, मेरे हृदय ने वही कहा है।"—कृष्णकांतजी की आवाज में स्नेह छलक रहा था।

"कब से आऊं ?"—मनोहर ने पूछा।

"कल से ही आना शुरू कर दो। आओगे न ?"

"अवश्य आऊँगा।"—मनोहर ने वचन दिया।

"जाओ। सदा सुखी रहो। अच्छा, अब मैं भी चला।"

पीपल की पत्तियाँ एक बार तेजी से हिली-डुली और पहले की ही तरह पुनः स्पन्दनहीन हो गयी।

दो

"तुम आ गये, मनोहर? तुम्हें देखकर बड़ी खुशी हुई। तुम समय के बड़े पाबन्द हो।" कृष्णकांतजी की आवाज सुनायी पड़ी।

"कहीं मुझसे देर तो नहीं हो गयी?"—मनोहर ने संकोच के साथ अपनी घड़ी की ओर देखते हुए पूछा। उसने देखा ठीक एक बज रहा था।

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है। तुम ठीक एक बजे आये। तुम्हारी थैली काफी भारी लग रही है? क्या है इसमें?"—कृष्णकांतजी ने जरा हँसी के साथ कहा।

"इस थैली में टेप रेकार्डर है। मैंने सोचा आपकी बातें सुनकर लिखने से ज्यादा कहीं अच्छा यह होगा कि मैं आपकी बातें टेप कर लूं। बाद में इसकी सहायता से लिखूंगा।"—मनोहर ने बताया।

"कहीं तुम्हारी इच्छा यह तो नहीं है कि तुम मेरी आवाज लोगों को सुनाते फिरो?"—कृष्णकांतजी की आवाज में हँसी मिश्रित थी।

"शायद वैसा करना बड़ा मनोरंजक प्रमाणित हो।"—मनोहर ने भी हँसते हुए जवाब दिया।

"ऐसा कभी मत करना वर्ना लोग तुम्हारा मजाक उड़ायेंगे। लोग कहेंगे—पता नहीं किसकी आवाज टेप कर लाया है और कहता है—भूत की आवाज है।"—यह बोलकर कृष्णकांतजी स्वयं हँसने लग गये।

मनोहर भी हँसी में शरीक हो गया।

"चलो, अब तैयार हो जाओ। अब मैं बोलूंगा।"

"बस एक मिनट में सब कुछ ठीक कर लेता हूं।"—मनोहर ने थैली के भीतर से टेप रेकार्डर निकाल कर चबूतरे पर रखते हुए कहा। उसने टेप रेकार्डर को एक बार चालू करके देख लिया। इस जांच के बाद उसने कहा—"कृष्णकांतजी, मेरा टेप रेकार्डर तैयार है। अब आप बोल सकते हैं।" यह बोलकर मनोहर ने ऊपर की ओर देखा मानो कृष्णकांतजी पीपल की किसी डाली पर बैठे हों।

पीपल की पत्तियां एक बार हिली-डुली और लगा कि डालों से

कोई आदमी चबूतरे पर धम् से कूदा और वह मनोहर की बगल में आकर बैठ गया।

मनोहर जरा सहम कर पीछे की तरफ सरक गया।

कृष्णकातजी की आवाज सुनायी पड़ी—"डरो मत, मनोहर। मैं ही हू। अब तुम अपना टेप रेकार्डर चालू कर दो।"

मनोहर ने अगल-बगल ताका, पर कृष्णकातजी कही दिखायी नही पड़े। मगर, मनोहर को ऐसी प्रतीति हो रही थी कि कृष्णकातजी उसके सामने ही बैठे हुए है।

मनोहर ने टेप रेकार्डर चालू करते हुए कहा—"अब आप बोल सकते हैं।"

कुछ पलों के बाद कृष्णकांतजी की गमगीन एवं भारी अवाज सुनायी पड़ने लग गयी—

"मेरा जन्म 13 फरवरी को हुआ था और मैं मरा भी 13 फरवरी को ही। पिछले पाच महीनों से मैं बिस्तर पर पड़ा था। मैं लकवाग्रस्त था और घर की माली हालत बहुत खराब थी। खाने के भी लाले पड़ रहे थे। इसके बावजूद मेरी पत्नी कमला मेरे इलाज के लिये चिंतित रहा करती। कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने मेरी बीमारी का समाचार छापा था और उन्होंने मेरी सहायता की याचना की थी। कुछ उत्साही साहित्य-प्रेमियों ने सरकार को भी मेरी सहायता के लिये लिखा था। लेकिन, मुझे किसी भी कोने से कोई सहायता नही मिली। हाँ, कभी-कभी सहृदय पाठकों का मनीआर्डर आ जाया करता था। दस या बीस रुपये के इन मनीआर्डरों के आगमन की जानकारी से यह कृष्णकांत भीतर-ही-भीतर टूक-टूक हो जाता था। जब ऐसा कोई मनीआर्डर आता तो मेरी इच्छा होती कि मैं यह भीख लेने से इंकार कर दू, पर मैं देखता कि सामने तो पोस्टमैन खड़ा होता और कमला याचना भरी दृष्टि लिये दरवाजे की ओट में खड़ी रहती। मैं कमला की आखों की भाषा पढ़कर स्वीकृति मे अपना माथा हिला देता। इन छोटी-मोटी राशियों से कमला किसी प्रकार घर चला रही थी। घर मे जो कुछ भी बेचने योग्य था, वह अब तक बेचा जा चुका था।"

"और आपके दोनों बेटे?"—मनोहर ने बीच मे ही यह सवाल पूछ लिया।

"हाँ, मेरे दो सपूत भी है। बड़े का नाम अमर है। उसकी शक्ल-सूरत अच्छी है। वह हीरो बनने के चक्कर मे बम्बई के अनेक फेरे लगा चुका है। हीरो तो वह बनने से रहा। हा, अब वह एक नाटक मंडली मे शामिल हो गया है। दूसरे सपूत का नाम है—अरुण। वह अपने को करोड़पति समझता

है। उसकी दोस्ती व्यापारियों के बेटों से है। पर, मेरे लिये तो दोनों ही बेटे सिरदर्द रहे हैं। घर आकर बात-बात में माँ से झगड़ना और अपनी बहनों से तू-तू मैं-मैं करना इनका दैनिक धंधा था। सुन रहे हो न, मनोहर ?"

"जी। आप तो सरकारी नौकरी में थे। आपको तो पेंशन मिलती होगी ?"—मनोहर ने पूछा।

"हाँ, मैं सरकारी नौकरी में था इसलिये मुझे पेंशन भी मिलनी चाहिये थी। तुम्हें जानकर ताज्जुब होगा कि मैं जीते जी पेंशन नहीं पा सका। मेरी पेंशन का मामला आज भी सचिवालय की फाइलों में दबा पड़ा है।"

"ऐसा क्यों ?"

"इसकी एक लम्बी कहानी है। फिर कभी इस पर बात करूंगा।"

"जी।"

"तेरह फरवरी की सुबह को रोज की तरह कमला मुझे जगाने के लिये आयी। मेरी आँखें बंद थीं। कमला ने मुझे हिलाया-डुलाया। जब मैं नहीं जगा, तो उसने मेरे पूरे शरीर को झकझोरना शुरू कर दिया। मैं कैसे जगता ? वहाँ तो केवल मेरा शव था। हंसा तो कब का उड़ चुका था। कमला दहाड़ मारकर मेरे सीने पर गिर पड़ी। वह उसी समय बेहोश हो गयी। उसके दहाड़ मारने की आवाज सुनकर मेरी दोनों बेटियाँ मेरे कमरे में दौड़ती हुई आयीं। उन्होंने फूट-फूट कर रोना शुरू कर दिया। इनके रोने की आवाज सुनकर मेरा छोटा सपूत अरुण अपनी दोनों आँखों को मलता हुआ मेरे कमरे में आया। दोनों बहनों को रोते देख उसने दोनों को कस कर डाँटा—यह क्या तमाशा है ! इतना रोना-पीटना क्यों मचा रखा है ? क्या बात है ?"

"फिर ?" —मनोहर ने पूछा।

"मेरी बड़ी बेटी संगीता ने रोते हुए कहा—बाबा चले गये।—इस पर अरुण ने डाटकर पूछा—बाबा कहाँ चले गये ? वह तो चारपाई पर सो रहे हैं।"

"फिर ?" —मनोहर ने आगे पूछा।

"कुछ सोचने के बाद मेरे छोटे सपूत ने मेरा सीना छुआ। मेरे हाथ-पैर टटोलने के बाद वह बोल पड़ा—तो बाबा मर गये। तो इसमें रोने की क्या बात है ?'—मेरे सपूत ने ऐसे कहा मानो कुछ भी नहीं हुआ। उसके चेहरे से लगा कि शायद वह कहने जा रहा था—दुनिया में लोग मरते ही रहते हैं, बाबा भी मर गये तो क्या हुआ ?—पर वह ऐसा बोल नहीं सका। वह कमरे से निकला और कहीं चला गया।"

"और आपका बड़ा बेटा अमर ?"—मनोहर ने छेड़ा।

"मेरा युवराज अपनी नाटक मंडली के साथ पिछले ही दिन कहीं नाटक करने चला गया था।"—कृष्णकांतजी की आवाज में व्यंग्य था।

"इसके आगे ?"

"माँ अचेत थी और बेटियाँ रो रही थीं। रोना सुनकर मुहल्ले के कुछ लोग मेरे घर में जमा हो गये। काफी देर के बाद कमला होश में आ सकी। घर में अमर या अरुण को न देखकर लोग ताज्जुब कर रहे थे। लोग अनेक प्रकार की बातें कर रहे थे। कोई एक-डेढ़ घंटे के बाद मेरे छोटे सपूत अरुण का आगमन हुआ। उसके साथ एक मित्र था। उसका नाम है सावर मल। पर, लोग उसे सांवरिया के नाम से ही जानते-पुकारते हैं। यह एक उद्योगपति का बेटा है। उसके कंधे से दो कैमरे लटक रहे थे। एक साधारण जापानी कैमरा था और दूसरा मूवी कैमरा। एक आदमी अपने साथी से कह रहा था—मुझे जो जानकारी है, उसके अनुसार घर में कुछ भी नहीं है। जनाजा उठाने के लिये मुहल्ले में चंदा इकट्ठा करना जरूरी है।—यह बात सांवरिया ने सुन ली। वह तुरत ताव में आ गया। उसने उसी समय सबके सामने अरुण के हाथ पर दस हजार रुपये की एक गड्डी रख दी और लोगों को सुनाते हुए जरा जोर से कहा—खबरदार जो किसी ने चंदा उगाहने की बात की। कृष्णकांतजी कोई भिखारी नहीं थे, जो उनकी अर्थी चंदे से उठायी जायेगी। कृष्णकांतजी इस देश के एक महान् साहित्यकार थे। उनकी अर्थी पूरे सम्मान के साथ उठेगी।"

"फिर ?"—मनोहर उतावला हो रहा था।

"लोग सांवरिया की बात सुनकर सकते में आ गए। देखते-ही-देखते अर्थाभाव के काले-काले बादल छंट गए और लोगों ने अपनी आंखों देखा कि मेरी अर्थी निकालने की शाही तैयारी शुरू हो गयी मगर, इस तैयारी को देखकर मेरी आत्मा रो पड़ी।"

"ऐसा क्यों, कृष्णकांतजी ?"—मनोहर पूछ बैठा।

"मनोहर, तुम सांवरिया को नहीं जानते। तुम सांवरिया के बाप को भी नहीं जानते। ये दोनों क्या हैं—इन्हें समझना बहुत मुश्किल है। खैर, सांवरिया के बारे में मैं तुम्हें फिर कभी बताऊंगा।"

"इसके बाद क्या हुआ ?"

"अब मैं तुम्हें अपने घर से दूर एक दूसरे घर में ले जाना चाहता हूं।"

"कहां ?"

"अपने छोटे भाई के घर। अपने घर से कुछ दूरी पर मेरे छोटे भाई का घर है। मेरा छोटा भाई अमरकांत इसी शहर में आयकर अधिकारी

है। खूब कमाता है। जमकर रिश्वत लेता है। उसका अपना बंगला है। अपनी कार है। मैंने ही इसे पढ़ाया-लिखाया था। इसकी शादी भी मैंने अपनी मेहनत की कमाई से की थी। तिलक-दहेज में जो कुछ भी मिला था, मैंने वह सब कुछ अमरकांत को ही सौंप दिया था। सुबह को ही किसी प्रकार इस अमरकांत को मेरे मरने की खबर मिल गई। जानते हो मनोहर, इसके बाद उसने क्या किया ?"

"क्या किया उन्होंने ?"

"अमरकांत ने अपनी पत्नी को जगाते हुए कहा—सुनीता, कृष्णकांत मर गया है। अभी-अभी खबर मिली है। चलो, जल्दी से हम लोग यहां से निकल जाएं। कहीं वहां से मरनी की खबर आ गई तो जानती हो क्या होगा ? आज से श्राद्ध के दिन तक का पूरा खर्च मुझे ही उठाना पड़ जाएगा। तुम्हें तो पता ही है कि कृष्णकांत के घर की क्या हालत है ? और सचमुच मेरा छोटा भाई उसी समय अपने पूरे परिवार के साथ कहीं चला गया।"

"यह तो अमरकांत ने बहुत ही बुरा किया।"—मनोहर ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

"मनोहर, मैं कैसे बताऊँ कि मैंने और कमला ने कितने कष्टों से इस अमरकांत को पाल-पोस कर आदमी बनाया था। लेकिन मेरा अपना खून भी मुझे इस प्रकार दगा दे गया। अब वह पैसे वाला हो गया है, इसलिए वह मुझे कृष्णकांत कहता है, कृष्णकांत भैया नहीं। जिस मां का दूध मैंने पिया था, उसी मां का दूध अमरकांत ने भी पिया था। मगर, मेरे मरने के बाद अमरकांत ने दूध के रिश्ते को जो लताड़ मारी, उससे मेरी आत्मा छटपटा उठी।"

इसी बीच एक दूसरा पीपल के चबूतरे की ओर बढ़ता हुआ दिखाई पड़ा। एकाएक वह लौटने लगा। संभवतः कृष्णकांतजी की आत्मा की ओर से उसे कोई संकेत मिल गया था—अभी इधर आना मना है।

"घर में रोना-धोना जारी था। मैं यह ईमानदारी से कह सकता हूं कि मेरी मौत का सबसे गहरा सदमा मेरी पत्नी कमला को ही लगा था। मेरे जीते जी भी उसने कोई कम कष्ट नहीं झेले और अब मेरे मरने पर भी सबसे ज्यादा आहत वही थी। यदि मेरे वश में होता तो मैं उसे रोते हुए कभी नहीं देखता। मगर, मैं तो उसके आँसू पोंछने की भी सामर्थ्य से वंचित हो गया था। बेटियां भी कोई कम दुखी नहीं थीं। उन्हें लग रहा था कि वे अब असहाय और निराधार हो गई हैं। उन्हें अपने नालायक भाइयों से कोई आशा नहीं थी।। मेरे लिए संतोष की बात सिर्फ यह थी कि दोनों बहनों ने एम० ए० कर लिया था। दोनों स्वस्थ हैं और सुन्दरी भी।

लोग भी बोलने लग गए जो अब तक चुपचाप तमाशा देख रहे थे। अरुण ने जवाब दिया—दस मिनट और रुक जाइए। एक आदमी की प्रतीक्षा है।—उस सज्जन ने पूछा—किसकी?—अरुण ने जवाब दिया—फोटोग्राफर की।—यह सुनकर उस आदमी ने सांवरिया की ओर केवल एक बार देखा मानो वह कहना चाह रहा हो—फोटोग्राफर साहब तो ये हैं ही। अब किसकी प्रतीक्षा है?"

"फिर क्या हुआ?"

"कोई पंद्रह मिनटों के बाद एक युवक आया। सांवरिया ने अपने दोनों कैमरे उसके हवाले कर दिए। नाई ने कहा—अर्थी में कंधा देने के लिए घर के चार आदमी आ जाएँ। सामने अरुण बाबू रहेंगे। अमर बाबू तो नहीं हैं। उनके बदले में किसे खड़ा किया जाए?—नाई ने अरुण की ओर ताका। इसी बीच निकट का मेरा एक सम्बन्धी कंधा देने के लिए सामने आ गया, पर अरुण ने कह दिया—आप नहीं। सामने मेरे साथ सांवरिया रहेगा।"

"अरुण ने ऐसा क्यों कहा?"

"अरुण तथा सांवरिया ने यह पहले ही निश्चय कर लिया था कि वे अर्थी को सामने से कंधा देंगे। जैसे ही अर्थी उठायी जाएगी, कई तसवीरें खींची जाएंगी और उन्हें आशा थी कि वे तसवीरें देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होंगी। मेरी अर्थी उठाने में इसीलिए देर की जा रही थी। यदि अर्थी पहले ही उठा ली गयी होती तो सांवरिया कंधा नहीं दे पाता और यह कंधा नहीं दे पाता तो विभिन्न पोजों में उसके चित्र कैसे लिए जाते?"

"कमाल है! दुनिया में एक-से-एक लोग हैं,"—मनोहर ने हिकारत के साथ कहा।

"मनोहर, मेरी अर्थी उठी और रोने वाली महिलाओं ने अपने सम्मिलित रुदन से घर की दीवारों को हिला दिया। मेरा जनाजा घर के बाहर आया और उधर मेरी ममता अचेत हो गयी। मेरी बेटियों ने रोते हुए उसकी मूर्च्छा तोड़ने का यत्न प्रारम्भ कर दिया। अर्थी अब गली में आ गई थी। घर से बाहर निकलते समय लोगों ने एक बार जोर से कहा—राम नाम सत्य है—और लोगों ने मिलकर मुझे मेरे ही घर से निकाल बाहर किया।"

"और?"—मनोहर ने जिज्ञासा प्रकट की।

"और श्मशान की ओर मेरी शव-यात्रा बढ़ने लगी। लोग तेजी से प्रसन्नतापूर्वक कदम बढ़ा रहे थे, क्योंकि फोटोग्राफर मुझे तथा साधारण

कैमरे से शव-यात्रा के चित्र फटाफट ले रहा था। कंधा बदलने की ऐसी उतावली मैंने पहले कभी नहीं देखी थी—किसी की भी शव-यात्रा में।"

"सचमुच, लोगों की यह रुचि अद्भुत है।"—मनोहर ने अपनी ओर से कहा।

"इस शहर में मेरे परिचितों, मित्रों, शुभचिंतकों तथा प्रशंसकों की संख्या सैकड़ों मे नहीं, हजारों मे है। परन्तु, यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि मेरी शव-यात्रा मे मुश्किल से तीस-पैंतीस व्यक्ति ही सम्मिलित हुए थे। मैं हिन्दी का एक लेखक हूँ, इसलिए आशा थी कि स्थानीय विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के अधिकाश हिन्दी के शिक्षक मेरी शव-यात्रा मे जरूर सम्मिलित होंगे, पर यह देखकर ग्लानि हुई कि शव-यात्रा मे केवल तीन-चार शिक्षक ही थे। उनमें एक तुम थे। तुमने तो स्वयं देखा था कि कितने लोग आए थे?"

"हाँ, मैंने देखा था। सचमुच हिन्दी के शिक्षकों की उपस्थिति उस दिन नगण्य थी।"—मनोहर ने पुष्टि में कहा।

"शव-यात्रा में नगर के साहित्यकार और कवि भी दो-तीन ही थे। पत्रकारों की संख्या भी दो-तीन ही रही होगी। अंग्रेजी के पत्रकार तो आए ही नहीं थे।"

"हां, यह भी सच है।"

"मनोहर, मैंने देखा है कि जब एक मजदूर की मौत होती है, तो उसके जनाजे मे सैकड़ों और हजारों की संख्या में अन्य मजदूर शामिल होते हैं। लेकिन, देश का एक प्रसिद्ध साहित्यकार मर गया, उसकी शव-यात्रा में सम्मिलित होने के लिए सौ व्यक्ति भी जमा नहीं हो सके। लगा कि मेरी साहित्य-सेवा बेकार गयी। काश! मैं मजदूर ही होता। यदि ऐसा हुआ होता तो मेरे जनाजे में कदाचित् सैकड़ों लोग तो जरूर ही शामिल होते।"

मनोहर ने एक गहरी सांस खींचकर अपनी ओर से दुःख प्रकट किया।

"शव-यात्रा श्मशान की ओर बढ़ती गयी। रास्ते मे चलने वाले लोग रुककर अर्थी की ओर देखते और एक-दूसरे से पूछते—किसकी अर्थी है? —किसी ने कहा—कोई मुंशी लगता है।—किसी ने कहा—कोई मास्टर लगता है।—किसी ने कहा—होगा कोई क्लर्क-फलर्क।—किसी ने कहा —कोई मामूली बाबू लगता है।—किसी ने कहा—कोई नौकरीपेशा आदमी मालूम पडता है।—एक ने तो झुंझला कर कहा—अरे, होगा कोई दुग्गी तिग्गी।—यह सब सुनकर मेरी आत्मा पर क्या गुजरी—मैं कैसे बताऊं? जिसके मन मे जो आया, वह बक गया, पर किसी के मुँह से यह सुनाई नहीं पड़ा—यह एक साहित्यकार की अर्थी है।—ये शब्द किसी

लोग भी बोलने लग गए जो अब तक चुपचाप तमाशा देख रहे थे। अरुण ने जवाब दिया—दस मिनट और रुक जाइए। एक आदमी की प्रतीक्षा है।—उस सज्जन ने पूछा—किसकी?—अरुण ने जवाब दिया—फोटोग्राफर की।—यह सुनकर उस आदमी ने सावरिया की ओर केवल एक बार देखा मानो वह कहना चाह रहा हो—फोटोग्राफर साहब तो ये हैं ही। अब किसकी प्रतीक्षा है?"

"फिर क्या हुआ?"

"कोई पंद्रह मिनटों के बाद एक युवक आया। सावरिया ने अपने दोनों कैमरे उसके हवाले कर दिए। नाई ने कहा—अर्थी मे कंधा देने के लिए घर के चार आदमी आ जाएँ। सामने अरुण बाबू रहेंगे। अमर बाबू तो नही हैं। उनके बदले मे किसे खड़ा किया जाए?—नाई ने अरुण की ओर ताका। इसी बीच निकट का मेरा एक सम्बन्धी कंधा देने के लिए सामने आ गया, पर अरुण ने कह दिया—आप नही। सामने मेरे साथ सावरिया रहेगा।"

"अरुण ने ऐसा क्यों कहा?"

"अरुण तथा सावरिया ने यह पहले ही निश्चय कर लिया था कि वे अर्थी को सामने से कंधा देंगे। जैसे ही अर्थी उठायी जाएगी, कई तसवीरें खींची जाएंगी और उन्हें आशा थी कि वे तसवीरें देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित होंगी। मेरी अर्थी उठाने मे इसीलिए देर की जा रही थी। यदि अर्थी पहले ही उठा ली गयी होती तो सावरिया कंधा नही दे पाता और वह कंधा नही दे पाता तो विभिन्न पोजों मे उसके चित्र कैसे लिए जाते?"

"कमाल है! दुनिया मे एक-से-एक लोग हैं,"—मनोहर ने हिकारत के साथ कहा।

"मनोहर, मेरी अर्थी उठी और रोने वाली महिलाओं ने अपने सम्मिलित रुदन से घर की दीवारों को हिला दिया। मेरा जनाजा घर के बाहर आया और उधर मेरी कमला अचेत हो गयी। मेरी बेटियों ने रोते हुए उसकी मूर्च्छा तोड़ने का यत्न प्रारम्भ कर दिया। अर्थी अब गली मे आ गई थी। घर से बाहर निकलते समय लोगों ने एक बार जोर से कहा—राम नाम सत्त है—और लोगों ने मिलकर मुझे मेरे ही घर से निकाल बाहर किया।"

"और?"—मनोहर ने जिज्ञासा प्रकट की।

"और श्मशान की ओर मेरी शव-यात्रा बढ़ने लगी। लोग तेजी से प्रसन्नतापूर्वक कंधे बदल रहे थे; क्योंकि फोटोग्राफर मुवी तथा साधारण

कैमरे से शव-यात्रा के चित्र फटाफट ले रहा था। कंधा बदलने की ऐसी उतावली मैंने पहले कभी नहीं देखी थी—किसी की भी शव-यात्रा में।"

"सचमुच, लोगों की यह रुचि अद्भुत है।"—मनोहर ने अपनी ओर से कहा।

"इस शहर में मेरे परिचितों, मित्रों, शुभचिंतकों तथा प्रशंसकों की संख्या सैकड़ों में नहीं, हजारों में है। परन्तु, यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरी शव-यात्रा में मुश्किल से तीस-पैंतीस व्यक्ति ही सम्मिलित हुए थे। मैं हिन्दी का एक लेखक हूँ, इसलिए आशा थी कि स्थानीय विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के अधिकांश हिन्दी के शिक्षक मेरी शव-यात्रा में जरूर सम्मिलित होंगे, पर यह देखकर ग्लानि हुई कि शव-यात्रा में केवल तीन-चार शिक्षक ही थे। उनमें एक तुम थे। तुमने तो स्वयं देखा था कि कितने लोग आए थे?"

"हाँ, मैंने देखा था। सचमुच हिन्दी के शिक्षकों की उपस्थिति उस दिन नगण्य थी।"—मनोहर ने पुष्टि में कहा।

"शव-यात्रा में नगर के साहित्यकार और कवि भी दो-तीन ही थे। पत्रकारों की संख्या भी दो-तीन ही रही होगी। अंग्रेजी के पत्रकार तो आए ही नहीं थे।"

"हाँ, यह भी सच है।"

"मनोहर, मैंने देखा है कि जब एक मजदूर की मौत होती है, तो उसके जनाजे में सैकड़ों और हजारों की संख्या में अन्य मजदूर शामिल होते हैं। लेकिन, देश का एक प्रसिद्ध साहित्यकार मर गया, उसकी शव-यात्रा में सम्मिलित होने के लिए सौ व्यक्ति भी जमा नहीं हो सके। लगा कि मेरी साहित्य-सेवा बेकार गयी। काश! मैं मजदूर ही होता। यदि ऐसा हुआ होता तो मेरे जनाजे में कदाचित् सैकड़ों लोग तो जरूर ही शामिल होते।"

मनोहर ने एक गहरी सांस खींचकर अपनी ओर से दुःख प्रकट किया।

"शव-यात्रा श्मशान की ओर बढ़ती गयी। रास्ते में चलने वाले लोग रुककर अर्थी की ओर देखते और एक-दूसरे से पूछते—किसकी अर्थी है?—किसी ने कहा—कोई मुंशी लगता है।—किसी ने कहा—कोई मास्टर लगता है।—किसी ने कहा—होगा कोई क्लर्क-फलर्क।—किसी ने कहा—कोई मामूली बाबू लगता है।—किसी ने कहा—कोई नौकरीपेशा आदमी मालूम पड़ता है।—एक ने तो झुंझला कर कहा—अरे, होगा कोई दुग्गी तिग्गी।—यह सब सुनकर मेरी आत्मा पर क्या गुजरी—मैं कैसे बताऊं? जिसके मन में जो आया, वह बक गया, पर किसी के मुँह से यह सुनाई नहीं पड़ा—यह एक साहित्यकार की अर्थी है।—ये शब्द किसी

की जिह्वा से सुनने के लिये मेरी आत्मा छटपटाती रह गयी, लेकिन ये शब्द किसी भी कोने से सुनने को नहीं मिल सके।"

मनोहर टेप रेकार्डर की ओर एकटक देख रहा था।

"श्मशान आ गया। मेरी अर्थी जमीन पर रख दी गयी। बस, आज इतना ही। शेष कल।"—कृष्णकांतजी की आवाज काफी भारी और आर्द्र हो चली थी।

तीन

"मरघट में फिर विवाद शुरू हो गया कि मुखाग्नि कौन देगा; क्योंकि मेरा युवराज अमर अब तक नहीं आ सका था। पुरोहित ने अरुण से कहा—अब और नहीं रुका जा सकता। मुखाग्नि तुम ही दे दो।—अरुण इसके लिए तैयार नहीं था। वह बार-बार यही कह रहा था—अमर भैया को आ जाने दीजिए।"

"अरुण आग देने में क्यों आनाकानी कर रहा था?" मनोहर ने पूछ लिया।

"मनोहर, क्या कहूं? कहते हुए जरा शर्म आती है। मेरे सपूत को यह चिंता सता रही थी कि यदि वह मुखाग्नि देने के लिए तैयार हो जाता है, तो उसे अपना मुण्डन करवाना होगा।"—कृष्णकांतजी की गीली आवाज थी।

"यह कौन नहीं जानता है कि जो आग देता है, उसे मुण्डन भी करवाना होता है? कम-से-कम इस मौके पर तो कोई आनाकानी नहीं हीं करता है।"—मनोहर की राय थी।

"मेरे सपूत को इस बात की जरा भी चिंता नहीं थी कि उसका बाप मर गया है। उसे तो अपने काले-काले घुघराले केशों की चिंता थी। अरुण के लिए बाप की तुलना में केशों का कहीं ज्यादा मोल था।"

"फिर क्या हुआ?"—मनोहर ने आगे जानना चाहा।

"वही हुआ जो होना था। जब लोगों ने उस पर थू-थू करना प्रारम्भ कर दिया तो उसे मुखाग्नि के लिए तैयार होना पड़ गया। नाई अरुण को लेकर नदी की ओर बढ़ गया। कुछ लोग चिता सजाने में जुट गये। उस दिन मैंने ध्यान से देखा कि आदमी दूसरे की चिता सजाने में कैसी तल्लीनता, ईमानदारी और रुचि से काम करता है।"

यह सुनकर मनोहर को हंसी आने ही जा रही थी कि बहुत मुश्किल से उसने अपने आप को हंसने से रोक लिया। उसे लगा कि उसकी हंसी का कहीं कृष्णकांतजी बुरा न मान जायें।

"दूसरी ओर कुछ लोग कई समूहों में बंट गये। ये लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। अधिकांश लोग मेरे ही सम्बन्ध मे बातचीत कर रहे थे। इनकी बातचीत का थोड़ा रसास्वादन करो।"

"जी।"—मनोहर ने सहमति मे कहा।

"एक पेड के नीचे चार व्यक्ति बैठे बातें कर रहे थे। इनमे से एक व्यापारी था, एक पत्रकार, एक शिक्षक और एक पुस्तक-विक्रेता। इन चारों व्यक्तियों मे मेरा परिचय था। इनसे राम-सलाम का मेरा नाता था। पर, इन व्यक्तियो मे से किसी ने भी मेरी कोई रचना नही पढ़ी थी। फिर भी ये लोग जानते थे कि मैं एक लेखक हूं, इसलिए ये लोग मेरी इज्जत भी करते थे। ये चारो मरघट बाद में आये। शव-यात्रा में ये लोग शामिल नही थे। जब इन्हे मेरी मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ, ये दौडे-दौड़े मेरे घर गए। वहा इन्हें मालूम हुआ कि जनाजा मरघट की ओर जा चुका है। ये सीधे यहां आ गए।"

"अच्छा।"

"अब इनकी बातचीत सुनो।

—पुस्तक विक्रेता ने सबसे पहले कहा—कृष्णकातजी की मृत्यु की खबर पाकर मैं दंग रह गया। खबर सुनते ही मैंने अपनी दूकान बंद कर दी और सीधे उनके घर चला गया।

—शिक्षक ने कहा—मैं कक्षा ले रहा था। चपरासी ने आकर मुझे बताया कि मेरे नाम कोई फोन आया था। फोन करने वाले ने मुझे यह जानकारी देने के लिए कहा है कि कृष्णकातजी का देहान्त हो गया है। यह सुनते ही मैं तो रो पड़ा। मेरे लिए कक्षा मे और ठहरना असभव हो गया, अतः मैंने कक्षा छोड दी। प्राचार्य को बोलकर मैं उसी समय कृष्णकातजी के घर की ओर भागा-भागा आया।

—इस पर व्यापारी ने कहा—कृष्णकांतजी थे ही ऐसे कि उनके मरने के समाचार ने बहुतों को रुला दिया। वह बहुत ही अच्छे आदमी थे। वह मेरी दूकान से ही कपडे खरीदा करते थे। यों वह कपड़े लेते तो उधार थे, पर देर से ही सही पाई-पाई चुका जाया करते थे। मैंने अपने जीवन मे ऐसा ईमानदार ग्राहक कभी नही देखा।

—इसके बाद पत्रकार ने कहा—कृष्णकांतजी क्या थे, इसकी ठीक-ठीक जानकारी आप लोगों को शायद नहीं है। हम लोग याने इस शहर के लोग

उन्हे एक मामूली आदमी मानते रह गये। हमने उन्हे कोई सम्मान नही दिया। कहते हैं न—घर की मुर्गी दाल बराबर होती है। बस, यहाँ के लोगो ने भी उन्हें घर की मुर्गी ही समझा। कृष्णकातजी वास्तव मे क्या थे, लोगों को अब पता चलेगा। कृष्णकातजी अब हमारे बीच नही हैं, इसलिए अब लोगों को यह मालूम होगा कि कृष्णकांत किस हस्ती का नाम था। इस देश मे जीते जी आदमी को केवल जिल्लत मिलती है। जब वह मर जाता है, तो लोग उसकी पूजा शुरू कर देते हैं। इस देश की यही रीत है।

—यह बोलकर पत्रकार एकाएक चिता की तरफ चला गया। शायद उसे उस तरफ कोई परिचित नजर आ गया था।"

"यही बात होगी।"—मनोहर ने कृष्णकातजी की बात का समर्थन किया।

"दूसरी ओर घाट की सीढियो पर पांच व्यक्ति बैठे बातें कर रहे थे। इनमे एक निर्माणाधीन साहित्यकार है और इसका नाम कमल है।"

"निर्माणाधीन साहित्यकार?"—मनोहर इस शब्द के कारण चौंक पड़ा।

"मनोहर, तुम चौंक क्यो गये?"

"निर्माणाधीन भवन, कारखाना या सिनेमा तो सुना था, पर निर्माणाधीन साहित्यकार यह पहली बार सुन रहा हूं।"—मनोहर ने हंसते हुए कहा।

कृष्णकांतजी की हंसी सुनायी पड़ी—"अच्छा, तो तुम मेरे शब्द-प्रयोग पर हंस पडे?"

"जी।"

"मैंने जान-बूझकर निर्माणाधीन शब्द का प्रयोग किया है, क्योकि कमल मे प्रतिभा का नितात अभाव है फिर भी वह महान् लेखक बनने का ठस्सा देता है।"

"तो यह मामला है।"

"हा।"

"ठीक है, आगे की बात बताइए।"—मनोहर ने उत्सुकता प्रकट की।

"चबूतरे पर जो दूसरा व्यक्ति बैठा हुआ था, वह एक प्रेस का मालिक है। उसका नाम चंद्रभूषण है। साहित्य मे उसकी गहरी दिलचस्पी है। तीसरा व्यक्ति एक साप्ताहिक निकालता है—नाम है निर्मल कुमार। चौथे व्यक्ति का नाम है—कामतानाथ। ये एक कॉलेज मे हिन्दी पढ़ाते हैं।

पाचवां व्यक्ति कौन था, मैं उसे ठीक नही पहचान सका था। इतना जरूर याद है कि उस व्यक्ति को मैं बराबर रास्ते मे मिला करता था। जब वह मेरे सामने आता, बड़े सम्मान के साथ वह मेरा अभिवादन किया करता था।"

"हां, ऐसा अक्सर होता है। जो व्यक्ति आपको नमस्कार बोल रहा है, उसे आप जानते ही हों, कोई जरूरी नही।"—मनोहर ने अपने अनुभव के आधार पर यह बात कही।

"चंद्रभूषण के मुह से अचानक निकल पड़ा—कृष्णकांतजी की मृत्यु से इस नगर का बडा नुकसान हुआ है। देश के साहित्यिक मानचित्र पर इस नगर का नाम कृष्णकातजी के चलते ही अंकित था। उनके निधन से अब मानचित्र से इस नगर का नाम भी मिट जाएगा; क्योंकि अब यहां कोई लेखक नही जिसे अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त हो।"

"इसके बाद ?"

"चद्रभूषण का इतना कहना था कि कमल के शरीर में आग लग गयी। उसने तमककर कहा—क्या बकवास कर रहे हैं, आप? क्या कृष्ण-कातजी इतने महान् थे कि उनके मरने से यह शहर ही खत्म हो जाएगा। इस शहर मे एक-से-एक लिखने वाले है। किसी के मरने से कुछ नही होता है। एक मरता है तो अनेक माई के लाल पैदा हो जाते हैं।"

"तब क्या हुआ ?"

"इस पर निर्मल कुमार ने बीच-बचाव करते हुए कहा—इसमें गुस्सा होने की बात क्या है? यह तो सही है कि इस शहर में एक-से-एक लिखने वाले लोग पड़े हैं। मगर, एक बात यह जरूर है कि किसी को भी वैसी शोहरत नही मिली है, जैसी शोहरत कृष्णकांतजी को मिली थी। यदि किसी को वैसी शोहरत मिली हो तो आप उसका नाम बताइए?"

"तब कमल ने क्या जवाब दिया?"

"कमल ने तुनककर कहा—जब आप लोग कुछ जानते ही नही है, तो बीच मे क्यों टांग अड़ा दिया करते हैं? कौन-कौन सी पत्रिकाएं पढते है, आप लोग?"

"इसके आगे किसी ने कोई उत्तर दिया या नही?"

"निर्मल कुमार कुछ बोलने ही जा रहा था कि कामतानाथ ने उसे बोलने से रोक दिया और स्वयं कहा—आप लोग आपस मे फिज़ूल झगड़ रहे है। आप लोग क्यों नही स्वीकार कर लेते कि हमारे कमलजी कृष्णकातजी से भी बड़े लेखक है?"

"फिर ?"

"चंद्रभूषण ने बड़े आक्रोश के साथ पूछा—क्यों मान लें ?"

"तब ?"

"तब कामतानाथ ने व्यंग्यात्मक लहजे में कहा—इसी सप्ताह कमलजी की एक चिट्ठी भारत के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी साप्ताहिक धर्मयुग में प्रकाशित हुई है और इनकी चिट्ठियां प्रायः सभी समाचार-पत्रों में भी छपती ही रहती हैं। इस दृष्टि से देश के लोग यह जानते ही हैं कि इस नगर में एक कमलजी भी हैं, जो यहां से पत्र लिख-लिखकर पत्र-साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।"

"वाह, यह तो खूब रही ! फिर क्या हुआ ?"

"यह सुनकर कमल ने एक बार सबकी ओर जलती हुई दृष्टि से देखा और कहा—हूं, ये लोग समझते हैं कि कृष्णकांतजी मर गये तो यह शहर भी मर गया।"

"फिर ?"

"कमल वहां से एक विजेता के समान उठकर कहीं और चला गया और बाकी बैठे लोगों ने मिलकर जोर का एक ठहाका मारा।"

"वाह ! यह तो खूब रही !"

"मनोहर, कमल के बारे में मैं तुम्हें एक बात और बताना चाहता हूं। एक बार [illegible]
दी और [illegible]
कैसी है [illegible]
दिनों के बाद आप आने की कृपा करें। उस दिन तो कमल चला गया, पर वह दूसरे ही दिन मेरे पास लौट आया। सौभाग्य से मैंने कमल की कहानी पढ़ ली थी। उसे समझाते हुए मैंने कहा—कमलजी, लिखने के पहले यह जरूरी है कि आप शुद्ध-शुद्ध लिखना जानें।—मेरा इतना ही कहना था कि कमल ने अपनी कहानी मेरे हाथ से छीन ली और उसने बड़े अभद्र ढंग से कहा—क्या सोचते हैं, आप ? क्या एक आप ही हिन्दी लिखना जानते हैं ?—यह बोलकर वह चला गया। इसके बाद उसने लोगों के बीच मेरे सम्बन्ध में अनाप-शनाप बोलना शुरू कर दिया।"

"वह क्या कहता था ?"—मनोहर ने प्रश्न किया।

"वह कहता फिरता था—कृष्णकांतजी एक बरगद हैं। वह नहीं चाहते कि कोई नया लेखक उनके मुकाबले में उभरे। इसीलिए वह मुझसे जलते हैं। अरे मैं तो ग्रेजुएट हूं—ग्रेजुएट। वह चले हैं मुझे हिन्दी सिखाने ! वह मुझे क्या हिन्दी सिखायेंगे ? खुद तो शायद मैट्रिक भी पास नहीं हैं।"

"मुझे नहीं मालूम था कि कमल इस किस्म का आदमी है।"

"खैर, छोड़ो इन बातों को। मेरी चिता सजाई जा चुकी थी। मेरा शव

उस पर रख दिया गया। लोग चिता की परिक्रमा के लिए तैयार थे। अरुण अपने सुन्दर और घुघराले केशों को गंवाकर जार-जार रो रहा था। लोग उसे सांत्वना दे रहे थे। बहुत मुश्किल से उसने मुखाग्नि देने की विधि सम्पन्न की। मैंने देखा कि चिता की परिक्रमा करते हुए लोग आंसू बहा रहे थे। ये वे लोग थे, जो मेरे स्नेही थे और मेरी मृत्यु से दुःखी थे। कितना विचित्र अनुभव प्राप्त हुआ उस दिन मुझे ! मेरा अपना बेटा अपने केशों के लिए रो रहा था जबकि दूसरे लोग मेरी याद मे आंसू बहा रहे थे। लोग कहते हैं कि खून का भी कोई रिश्ता होता है।"

कुछ क्षणों के लिए कोई आवाज सुनाई नही पड़ी। इस व्यवधान से मनोहर कुछ चिंतित हुआ। उसने जरा जोर से आवाज दी—"कृष्णकांतजी, आप अचानक चुप क्यों हो गये ?"

"मनोहर, जरा गला रुंध गया था। अब बोलता हूं। एक ओर मेरा सपूत रो रहा था और दूसरी ओर उसका मित्र सांवरिया चिता से उठ रही लपटों की तस्वीरें खींचने मे व्यस्त था—अपने मूवी कैमरे से। उसके लिए तो आज एक महोत्सव था। उस समय केवल मैं ही जान रहा था कि सांवरिया यह सब क्यों कर रहा था। मगर, मरघट पर मौजूद लोग तो यही कह रहे थे—मित्र ऐसा होना चाहिए। खुद तो करोड़पति बाप का बेटा है, लेकिन अरुण के साथ उसने जो दोस्ती निभाकर दिखा दी, वह एक दृष्टान्त ही है। दोनों की दोस्ती कृष्ण-सुदामा की दोस्ती है।—परन्तु, वह क्या थी, लोग जान भी कैसे सकते थे ?"

"इस पर आप थोड़ा प्रकाश डालिए न ?"—मनोहर ने अनुरोध किया।

"आज नहीं, मनोहर। सांवरिया के बारे में मैं फिर कभी पूरे विस्तार के साथ बताऊंगा।"

"ठीक है।"

"चिता जलती रही। लपटें उठती रहीं। मेरा शरीर जलता चला गया। अंग-अंग जलकर अलग हो गए। लोगों ने बड़े-बड़े बांसो की सहायता से मेरे शरीर के अधजले मांस के लोथड़ों को चुन-चुन कर आग की ज्वाला मे झोंकना शुरू कर दिया। मेरा शरीर तेजी से राख बनता चला जा रहा था, पर मेरा युवराज अमर अब तक मरघट नही पहुंच सका था। वह आता भी कैसे ? वह तो नाटक के एक विशेष दृश्य में मशगूल था। कुछ लोग श्मशान मे जा चुके थे। बाकी बचे लोग अभी भी अमर की राह देख रहे थे।"

"एक बात पूछूं, कृष्णकांतजी ?"— मनोहर ने संकोच के साथ पूछा।

"पूछो, मनोहर।"

"आप तो जानते ही होंगे कि आपका बड़ा बेटा अमर उस समय कहां था ?"

"हां, जानता था।"—कृष्णकांतजी की एक गहरी सांस की ध्वनि सुनाई पड़ी।

"क्या आप इसकी जानकारी मुझे भी देना चाहेंगे ?"

"सावरिया की कार अमर को लेने के लिये नाटक घर पहुंची, तो ड्राइवर को पता चला कि मेरा युवराज झरना देखने गया है। उसके साथ नाटक की खूबसूरत नायिका भी गयी है। ड्राइवर उसी समय झरने की ओर बढ़ गया। झरने के नीचे मेरा सुपर स्टार अपनी सुपर स्टारनी के साथ ठीक उसी भंगिमा मे स्नान कर रहा था, जिस भंगिमा मे राजकपूर की फिल्म 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' मे जीनत अमान एवं शशि कपूर स्नान कर रहे होते हैं।"

"यह तो बड़ी शर्मनाक बात है।"—मनोहर की प्रतिक्रिया थी।

"मनोहर, यह तो कुछ भी शर्मनाक नही है। आगे सुनो। जब कार के चालक ने मेरे युवराज को यह सूचना दी—आपके पिताजी का देहान्त हो गया है। जल्दी चलिए, लोग आपका मरघट मे इतजार कर रहे हैं, तो मेरे युवराज ने क्या कहा जानते हो ?"

"क्या कहा अमर ने ?"

"अमर ने कहा—कबाब मे हड्डी। बुड्ढे को मरना भी था तो आज ही।"

"छिः छि.।"—मनोहर बोल पड़ा।

"यदि मेरे वश में होता तो, मरने के पहले एक बार मैं अपने युवराज से पूछ लेता—बोलो, मैं कब मरू ताकि तुम्हारी मुहब्बत मे खलल न पड़े। मगर, मैं मजबूर था। मैं ऐसा नही कर सकता था। आदमी के हाथ मे मौत नही होती। आदमी ही मौत के हाथ मे होता है। वास्तव मे उस दिन कबाब मे हड्डी बनने का बड़ा मलाल हुआ।"

मनोहर दु खी मन से सुन रहा था।

"खैर, लोक-लाज के चलते मेरा युवराज मरघट आ गया।"

"वह कब आया ?"—मनोहर ने पूछ लिया।

"वह मरघट मे उस समय पहुंचा जब मेरी कपाल-क्रिया हो चुकी थी। लोग लौटने की तैयारी कर रहे थे। अंधेरा फैलने ही वाला था। मरघट के सामने सावरिया की कार ऐसे रुकी मानो वह सौ मील की गति से आई थी। उससे भी दुगने वेग से अमर ने कार का दरवाजा खोला और उससे

भी अधिक रफ्तार से दौड़ते हुए वह मेरी चिता के सामने आकर चीखता हुआ दंडवत् पसर गया। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा—बाबा, आप हमे छोड़कर कहां चले गए?…आप कहां चले गए?…आपने हमे अनाथ क्यों बना दिया?—वह प्रलाप करता जाता और वेदी पर अपना माथा पटकता जाता। सांवरिया ने इस दृश्य के फटाफट चित्र लेने शुरू कर दिए। अमर रह-रहकर ऐसी मुद्रा बनाता कि वह मेरी चिता मे ही घुस जाना चाहता हो। उसकी इस प्रवृत्ति को देखकर कुछ लोगों ने उसकी दोनों टांगों को पीछे से पकड लिया। लोग उसकी टांगें पीछे खीचते और मेरा युवराज अपने को आगे की ओर तानता। देखने वालों को लगा कि अमर विक्षिप्त-सा हो गया है। उसने जो नाटक सबके सामने पेश किया, उससे सभी आतंकित हो उठे। उसका रोना, बार-बार अपने बालों को नोंचना, अपने कपड़ों को चीथड़े-चीथड़े करना और वेदी पर माथा पटकना बडा कारुणिक एवं हृदयद्रावक दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। बहुत देर तक वह इसी प्रकार नाटक करता रहा। अब पूरी तरह अंधेरा हो गया। लोग उसे समझा-बुझाकर वहा से उठाने मे सफल हो गये। वह उठकर कुछ दूर चला ही था कि एकाएक वह चिता की ओर फिर लौट पडा। वह एक बार जोर से चिल्लाया—बाबा, आप अपने साथ हमे भी लेते चलिए।—लोगों को लगा कि वह चिता मे सचमुच कूद पड़ेगा, अतः एक साथ कई आदमियों ने लपककर उसे दबोच लिया और सांवरिया की गाड़ी मे लाकर ठूस दिया। अमर की अगल-बगल मे दो मजबूत लडके बैठ गये। गाड़ी चल पड़ी।"

"फिर क्या हुआ?"

"मनोहर, मेरे युवराज अमर ने मरघट के रंगमंच पर इतना बढ़िया नाटक पेश किया कि उसे देखकर कोई भी पिघल सकता था। मैं स्वयं उसके इस नाटक से काफी प्रभावित हुआ। यदि मैं समर्थ होता तो चिता से उठकर एक बार तालियां जरूर बजाता और अमर के अभिनय की प्रशसा करते हुए उससे अनुरोध करता—वन्स मोर।"

आवाज से ही मनोहर ने जान लिया था कि कृष्णकांतजी की आत्मा अत्यन्त कातर हो चली थी, अतः उसने अपनी ओर से कुछ भी कहना उचित नही समझा।

"मनोहर, मुझे खेद है कि मैं पुत्रवान हुआ। नालायक बेटों के पिता होने से कही ज्यादा अच्छा होता कि मैं पुत्रहीन ही रह जाता। जानते हो, यह वही अमर है, जो मेरे घर आने वाले अतिथियो और मिलने वालों को बराबर जली-कटी सुनाया करता था। मेरे घर मे जो कोई भी आता, उसके लिए कमला कम-से-कम एक कप चाय जरूर भिजवाती थी। यह बात मेरे

युवराज अमर को पसन्द नहीं थी। इसके कारण वह बराबर अपनी मां से उलझता रहा। चाय की प्याली देखते ही वह कहता—केवल चाय क्यों भेजी जा रही है ? पकौड़िया भी तलकर भेजो। हो सके तो देशी घी की कचौरियां भी भेजो। मेहमानदारी ज्यादा जरूरी है न ? घर में चूहे दंड पेलते हैं, तो पेलें। पता नहीं, साले कहां से रोज-रोज चले आते हैं यह कहने वाले—कृष्णकांतजी, आप एक महान् लेखक हैं···आप इस शहर की *शान हैं·· 'मैं आपके ही दर्शन के लिए यहां आया हूं···'बस, देर क्या है ?* चाय हाजिर होनी ही चाहिए।"

"अमर के बारे मे मुझे यह सब मालूम नही था।"—मनोहर ने बताया।

"इस अमर ने मुझे जीते जी ही मार दिया था। इसने अपनी कड़वी-कड़वी बातों से मेरे सीने को पहले ही चलनी बना दिया था। मैं बहुत शर्मिन्दा हूं, इस बात के लिए मनोहर, कि मैं अमर जैसे नालायक बेटे का बाप हूं। बस, आज इतना ही। अब और नहीं बोला जा रहा है। क्यों नो, आज मन कुछ ज्यादा ही भारी हो चला है ?"

ऐसा लगा कि कोई चबूतरे से उड़कर पीपल की पत्तियों मे समा गया।

चार

"मेरी मृत्यु का समाचार पाते ही आकाशवाणी के स्थानीय केन्द्र में एक समस्या उठ खड़ी हुई।"

"कैसी समस्या ?" —मनोहर ने जरा चौंकते हुए पूछा।

"चूंकि मैं एक चर्चित साहित्यकार माना जाता था और आकाशवाणी को भी बराबर सहयोग देता आया था, अतः वहां के अधिकारियों ने उचित समझा कि मेरे निधन पर स्थानीय साहित्यकारों की श्रद्धांजलि प्रसारित की जाय। यह काम तत्काल किया जाना था। लेकिन, समस्या यह थी कि [illegible]

[illegible]

...पना किया जाय। एक साहसी अधिकारी ने अत्यधिक विचार-विमर्श को बेकार बताते हुए कहा—ऐसे नाजुक मौकों पर बहस बराबर बेकार साबित होती है। हमें समय का तकाजा समझना चाहिए। यह समय लौटकर फिर

नही आएगा। कृष्णकांतजी जैसे प्रसिद्ध लेखक की मृत्यु पर यदि हमारा केन्द्र कोई विशेष कार्यक्रम प्रसारित नही करता है, तो इससे केन्द्र की बदनामी ही होगी। लोग यही कहेंगे कि यह केन्द्र निठल्लों का अड्डा मात्र है। इसके अधिकारी नालायक हैं और मैं इस केन्द्र के बारे में ऐसी कोई भी बात सुनने को तैयार नही। मैं जा रहा हूं कार्यक्रम की तैयारी करने। आज रात को कृष्णकांतजी की मृत्यु पर इस नगर के कुछ साहित्यकार और विद्वान अपनी-अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत करेंगे। इस कार्यक्रम में मैं तीन प्रसिद्ध व्यक्तियों को शामिल करूंगा। कल सुबह को कृष्णकांतजी की जीवनी भी प्रसारित करूंगा।—यह बोलकर वह अधिकारी अपने कक्ष की ओर चला गया और सचमुच वह तुरत ही कार्यक्रम की तैयारी में जुट गया।"

"मैंने भी दोनो कार्यक्रम सुने थे। दोनो ही कार्यक्रम बहुत अच्छे ढंग से प्रसारित किए गए थे।"—मनोहर ने बताया।

"हां, दोनों ही कार्यक्रम बहुत अच्छे बन पड़े थे, मगर कार्यक्रम के पीछे के जो किस्से हैं, वे कम मनोरंजक नही। बेचारे प्रभाकर ने तो अपने कर्त्तव्य का निर्वाह ईमानदारी और तत्परता के साथ किया, पर उसके साथ..."

मनोहर ने बीच मे ही रोकते हुए पूछ लिया—"यह प्रभाकर कौन है?"

"अरे, हाँ, मैंने तो तुम्हें यह बताया ही नही कि प्रभाकर ने ही दोनों कार्यक्रमो की तैयारी की थी। प्रभाकर आकाशवाणी में कार्यक्रम अधिशासी थे।"

"हां, मैं उन्हे जानता हूं।"—मनोहर ने कहा।

"प्रभाकर ने तय किया कि रात वाले कार्यक्रम में जो तीन व्यक्ति बुलाए जाएगे, वे होंगे—डॉ॰ सोमनाथ, सुप्रसिद्ध लेखक देवेन्द्र प्रसाद तथा हिन्दी के विदेशी विद्वान डॉ॰ केली। डॉ॰ सोमनाथ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष है, इसलिए लोग उन्हें कुछ अतिरिक्त सम्मान देते हैं। प्रभाकर डॉ॰ सोमनाथ का शिष्य भी रह चुका है, अतः सबसे पहले उसने अपने गुरु डॉ॰ सोमनाथ से ही सम्पर्क करना उचित समझा।"

"यह तो बड़ा स्वाभाविक है।" मनोहर की टिप्पणी थी।

"बातचीत फोन पर हुई थी, जो इस प्रकार है—

—आकाशवाणी से मैं प्रभाकर बोल रहा हूँ। प्रणाम सर।

—प्रणाम, प्रणाम। कहो प्रभाकर कैसे हो?—डॉ॰ सोमनाथ का उत्तर था।

—सब ठीक है, सर। आपके आशीर्वाद से सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है।

—कहो ? क्या बात है ? कोई विशेष बात है क्या ?

—आप मरघट में नजर नहीं आये, सर ?

—मरघट में ! मैं क्यों मरघट जाता ?

—कृष्णकांतजी की मृत्यु हो गयी है न।

—अरे हाँ, मैंने भी सुना है।

—मैं उन्हीं के बारे में कह रहा था।

—बस यों ही नहीं गया।—डॉ० सोमनाथ ने बात बहुत लापरवाही के साथ कही।

—कोई कारण तो होगा ?

—बस, यों ही नहीं गया। कितने लोग थे—वहाँ ?

—कम ही थे।

—फिर भी ?

—यही कोई चालीस-पैंतालीस।

—तब तो काफी लोग थे।—डॉ० सोमनाथ ने हँसकर कहा।

—सर, एक प्रार्थना है।

—कहो।

—आज रात्रि को आठ बजे कृष्णकांतजी के निधन पर एक श्रद्धांजलि गोष्ठी प्रसारित करना चाहता हूँ।

—अच्छी बात है। करो।

—इसमें केवल तीन ही व्यक्ति रहेंगे। पहला नाम आपका ही है।

—इसमें मुझे क्यों घसीटते हो ?

—आपके बगैर यह कार्यक्रम पूरा कैसे हो सकता है ? कृष्णकांतजी को इस शहर में आपसे अधिक और कौन जानता है ?

—यह तो ठीक है कि मैं कृष्णकांत को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ, लेकिन जो मैं जानता हूँ यदि मैं बोलूंगा तो बहुतों को बड़ा कष्ट हो जाएगा। सबसे अधिक पीड़ा दिवंगत आत्मा को होगी।

—सर, आप साहित्य-मर्मज्ञ हैं। आज साहित्यकार कृष्णकांत को श्रद्धांजलि देनी है, उस कृष्णकांतजी को जो साहित्य-गगन में सूरज की तरह चमक रहे थे।

[डॉ० सोमनाथ ने जोर का ठहाका मारा।]

—सर, आप हँस रहे हैं ? क्या मुझसे कोई भूल हो गयी ?

—हां, हंस रहा हूं—तुम्हारे भोलेपन पर। तुम भी सुन-सुनायी बातों को दुहराने लगे हो? अरे प्रभाकर, कृष्णकांत ने आखिर ऐसा क्या लिखा है, जो तुम लोग इतना हल्ला मचा रहे हो? कृष्णकांत कब से महान् साहित्यकार बन गया? मैंने तो कभी भी नही माना कि वह लेखक भी था।

—सर, हिन्दी-संसार में उनकी प्रतिष्ठा है। लोग उन्हे महान् साहित्यकार मानते रहे हैं।

—हां, यह बात तुमने ठीक कही है कि लोग उन्हें महान् साहित्यकार मानते रहे हैं। लेकिन, यह जरूरी तो नही कि बेवकूफ जो मानते रहे हैं, वही बात डॉ० सोमनाथ भी मान ले?

—सर?

—देखो प्रभाकर, मैं ठहरा मौलिक चिंतक। मैं वही नही सोचता, जो साधारण लोग सोचते हैं। मेरे पास अपना मस्तिष्क है। मैं उसका उपयोग करना भी जानता हूं। यह भी जानता हूं कि साहित्य क्या है। मेरी दृष्टि मे कृष्णकांत का कोई महत्त्व नही। यदि वह महान् लेखक माना जा सकता है, तो मुझे यह भी कहना चाहिए कि गुलशन नन्दा और प्रेम बाजपेयी हिन्दी के उपन्यास-सम्राट् हैं। देखो प्रभाकर, बहुत छपना एक अलग चीज है और साहित्य लिखना एक अलग चीज है। जो कृष्णकांत मेरी नजर में लेखक नहीं, उसकी शव-यात्रा मे शामिल होना और तुम्हारे आज के कार्यक्रम में उसकी रचनाओं की झूठी प्रशंसा करते हुए उसे श्रद्धांजलि अर्पित करना दोनों एक जैसे घटिया काम लगते हैं—मुझे। मैं तुम्हारे इस कार्यक्रम में भाग नहीं ले सकता। ढूंढो, तुम्हें अनेक विद्वान् मिल जायेंगे इस नगर में! ऐसे घटिया कामों के लिए डॉ० सोमनाथ न तो कभी उपलब्ध था, न है और न कभी रहेगा।—यह बोलकर डॉ० सोमनाथ ने अपना फोन पटक दिया।"

"मैं नहीं समझता था कि डॉ० सोमनाथ के विचार इतने निम्न स्तर के होंगे। मैं तो उन्हें एक बड़े विद्वान् के रूप में जानता रहा था।"—मनोहर ने अपने विचार प्रकट किये।

"मनोहर, डॉ० सोमनाथ ने बराबर मेरा अहित किया है। उन्होंने हर जगह मेरा विरोध किया है। इसके बावजूद मैं उनके बारे में यही कहता हूं—व्यक्तिगत मतभेद एक अलग चीज है, पर डॉ० सोमनाथ की विद्वत्ता के सम्बन्ध मे कोई मतभेद नही हो सकता। मैं तो उन्हें महान् विद्वान् मानता रहा, लेकिन उन्होंने यह भी कभी स्वीकार नहीं किया कि मैं लेखक भी हूं।"

"ऐसा क्यो ?"—मनोहर ने कारण जानना चाहा।

"इसका एक कारण है।"

"कौन-सा कारण है ?"

"विश्वविद्यालय के सिंडिकेट मे कुछ सदस्यो ने यह प्रस्ताव रखा कि कृष्णकातजी एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार है, अतः उन्हें विश्वविद्यालय की ओर से डी० लिट् की मानद उपाधि प्रदान की जाय। कुलपति महोदय ने यह प्रस्ताव डॉ० सोमनाथ के पास अग्रसारित कर दिया था—उनकी अनुशसा के लिए। डॉ० सोमनाथ ने प्रस्ताव के विरोध में बहुत कुछ लिखा। परिणाम यह हुआ कि प्रस्ताव की भ्रूण-हत्या हो गयी।"

"डॉ० सोमनाथ ने ऐसी नीच हरकत क्यों की ?"—मनोहर ने क्षुब्ध होकर पूछा।

"डॉ० सोमनाथ एक विचित्र ग्रंथि से पीड़ित हैं। यह उस समय की बात है, जब पूरे विश्वविद्यालय मे डॉ० सोमनाथ अकेले डी० लिट् थे। उन्होंने सोचा—मैंने तो मर-खप कर यह उपाधि प्राप्त की थी, लेकिन यह कृष्णकात बैठे-बिठाये डी० लिट् कैसे बन जायेगा ? बस इसी ग्रंथि से पीड़ित होने के कारण उन्होंने उस प्रस्ताव का जमकर विरोध किया था। तुमने यह तो सुना ही होगा कि एक जंगल मे दो सिंह कभी भी एक साथ नहीं रह सकते। इस घटना के बाद डॉ० सोमनाथ ने स्वयं डी० लिट् की उपाधि को इतना सस्ता बना दिया कि क्या कहू ? इसके बाद उनके निर्देशन में जिसने भी शोध किया, उसे डी० लिट् की ही उपाधि प्राप्त होती रही।"

"फिर आकाशवाणी के कार्यक्रम के बारे में क्या हुआ ?"

"प्रभाकर को डॉ० सोमनाथ की बातों से ठेस लगी। उसने उसी समय अपने गुरु के सम्बन्ध मे अपनी धारणा बदल ली। कार्यक्रम यथासमय प्रसारित हुआ। मगर, इस बीच एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना और घट गयी।"

"कैसी घटना ?"

"डॉ० सोमनाथ जब फोन पर प्रभाकर से बातें कर रहे थे, तो वहा उनके कमरे मे एक कांग्रेसी विधायक बैठे हुए थे। उनके मन में चर्चित बने रहने की असीम लालसा रहती है। उन्होंने तुरत अपने घर आकर प्रभाकर को फोन किया।"

"क्या फोन किया ?"

"लो, सुनो दोनो की बातचीत—

—प्रभाकर जी, नमस्ते। मैं गोपाल बोल रहा हूं। गोपाल एम० एल० ए०।

—नमस्ते, नमस्ते, गोपालजी। कहिए···कैसे याद किया आपने ?

—सुना है, आज आपका [illegible]
लिए कोई कार्यक्रम प्रसारित [illegible]

—जी, आपने ठीक ही सुना है। [illegible]
होगा।

—वाह, क्या संयोग है! आज [illegible]
हाथों में भी कृष्णकांतजी को [illegible]

—गोपाल जी, कार्यक्रम [illegible] साहित्यकार के निधन से [illegible] सम्मिलित किया जा रहा है जो [illegible] से अच्छी तरह परिचित हैं।

—अरे भाई, प्रभाकरजी को [illegible] में मैंने उनकी एक कविता भी पढ़ी थी। [illegible] का। अभी भूल रहा हूं। मैं भी [illegible]"

"क्या कहा, गोपालजी ने [illegible]"—[illegible] चौंकते हुए पूछा।

"मैंने आज तक कभी कोई [illegible] कविता भी पढ़ ली। कमाल है। [illegible] लोग हैं।"—कृष्णकांतजी [illegible]

"इसके बाद [illegible]"—[illegible]

"आगे की [illegible]—

—पर?

—पर [illegible]?

—इस कार्यक्रम में [illegible] नहीं।

—क्यों?

—यही विवशता है।

—थोड़ी कोशिश कीजिए। [illegible]

—बिलकुल संभव नहीं लगता।

—तो क्या मैं [illegible]?

—मैं बहुत मजबूर हूं।

—प्रभाकरजी, आप होश में तो हैं?—गोपाल ने क्रोध से कांपते हुए बोलना शुरू कर दिया—क्या आपको पता है कि आप किससे बातें कर रहे हैं? मेरा नाम—विधायक गोपाल है। विधान सभा में भी [illegible] हिम्मत नहीं होती कि वह मुझे बोलने से रोक देने की [illegible]

आप मुझे अपनी लाचारी बता रहे है ?

—गोपालजी, आप नाराज न हो। जरा मेरी स्थिति समझने की कोशिश कीजिए।

—प्रभाकरजी, मुझे तो जो समझना था, मैंने समझ ही लिया है। अब आप तैयार रहिए—समझने के लिए।—यह बोलकर गोपाल ने अपना फोन पटक दिया।"

"दुनिया मे एक-से-एक बढ़कर लोग है।"—मनोहर ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"प्रभाकर ने दोनो ही कार्यक्रम प्रसारित किए। लोगों ने इन कार्यक्रमो को पसन्द भी किया। तत्काल कार्यक्रम प्रसारित करने के लिए आकाशवाणी की काफी प्रशसा भी हुई। मैं स्वय दोनो प्रसारणो से सतुष्ट था। मगर···"

"मगर, क्या ?"—मनोहर ने टोका।

"मगर, इन दोनो कार्यक्रमो के चलते प्रभाकर को दंडित होना पडा।"—कृष्णकांतजी का भारी स्वर सुनायी पड़ा।

"वह कैसे ?"

"बताता हूं। जब आकाशवाणी के केन्द्र निदेशक सरवर अली छुट्टी से लौटकर आए, तब उन्हे दोनो प्रसारणों की जानकारी दी गयी। समाचार-पत्रों में इनके बारे में जो प्रशंसन छपा था, उसे भी उन्होंने देखा। श्रोताओं के जो पत्र आए थे, उन्हे पढकर वह गद्‌गद् हो उठे। उन्होने प्रभाकर की पीठ ठोंकते हुए कहा—आप काफी समझदार हैं। मेरी गैरहाजिरी मे आपने जो फैसला किया था, वह लाजवाब था। मैं इन प्रोग्रामों के लिए आपका शुक्रगुजार हूं।—यह सुनकर प्रभाकर बहुत खुश हुआ था। लेकिन···"

"लेकिन, क्या ?"

"लगभग तीन बजे गोपाल केन्द्र निदेशक से मिलने के लिए आया। सरवर अली ने अपनी कुर्सी से उठते हुए कहा—आइए, आइए गोपालजी, आदाब।

—नमस्ते, नमस्ते सरवर साहब। कहिए, कैसे हैं—आप ?

—मजे मे हूं, जनाब।

-मैं आपकी प्रतीक्षा काफी दिनों से कर रहा था।

—ऐसी भी क्या बात थी ? कहिए, बंदा हाजिर है खिदमत के लिए।

—आपकी गैरहाजिरी मे यहां एक बड़ा गलत काम हो गया।

—गलत काम ?

—हां, गलत काम। यदि उसकी खबर श्रीमती गांधी को मिल गयी तो आप यही समझिए कि आपके बाल-बच्चे भूखो मरेंगे। और हो सकता है

कि अब तक यह खबर श्रीमती गांधी को मिल भी गयी हो।

—वल्लाह, आप क्या कह रहे हैं ?

—मैं ठीक बोल रहा हूं।

—जरा खुलासा तो कीजिए कि क्या मामला है ? मेरी तो अभी से ही सांस रुकने लगी है।

—कृष्णकांतजी को तो आप जानते थे न ?

—हां, हां, खूब जानता हूं। वह बराबर यहां तशरीफ लाया करते थे। उनके इंतकाल पर हमारे स्टेशन ने दो लाजवाब प्रोग्राम भी पेश किए हैं।

—बस, बस, मैं उन्हीं प्रोग्रामों की बात कर रहा हूं।

—क्या उनमें सरकार के खिलाफ कोई बात थी ?

—पूरे-के-पूरे दोनों प्रोग्राम श्रीमती गांधी के खिलाफ चले गए।

—वल्लाह, आप यह क्या कहर बरपा रहे हैं ?

—मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूं।

—जरा मुझे भी बताइए कि असली बात क्या है ?

—जनाब, शायद आपको पता नहीं कि कृष्णकांतजी इंदिरा-विरोधी थे ? जब जयप्रकाश नारायण ने यहां इंदिरा-विरोधी समग्र क्रांति का नारा दिया था और एक आम-सभा की थी, तो उस सभा की अध्यक्षता कृष्णकांत जी ने ही की थी। कृष्णकांत जैसे इंदिरा-विरोधी लेखक के मरने पर दो-दो कार्यक्रम पेश कर आपके केन्द्र ने बहुत ही गलत काम किया है।

—या अल्लाह, मैं तो बुरी तरह मारा गया। मैं तो जानता ही नहीं था कि कृष्णकांत इतने खतरनाक किस्म के आदमी थे।

—कृष्णकांतजी जनसंघी भी थे।

—क्या कहा ? कृष्णकांतजी जनसंघी भी थे ? तौबा, तौबा। यह बात तो मुझे जरा भी मालूम नहीं थी।

—आपको पता भी कैसे होता, आप तो कुछ महीनों के पहले यहां आए ही हैं।

—मगर, मैं तो मुफ्त में मारा जाऊंगा। अब क्या करूं ?

—अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। आप एक काम करें।

—कहिए, क्या करूं ?

—आप तो यहां थे ही नहीं, इसलिए यह कोशिश की जाएगी कि आपके ऊपर किसी तरह की आंच नहीं आए। जिस आदमी ने इन कार्यक्रमों को प्रसारित करवाया था, उसे ही फंसाने की कोशिश की जाएगी। आप उस अधिकारी से आज ही कैफियत तलब कीजिए कि उसने इंदिरा-विरोधी

लेखक के मरने पर अपनी मर्जी से दो-दो कार्यक्रम क्यों प्रसारित किए ? ऐसा करने से दो फायदे होंगे।

—क्या-क्या ?

—इंदिरा जी की निगाह में आप एक कठोर प्रशासक माने जाएंगे। यह होगा पहला फायदा।

—और दूसरा फायदा क्या होगा ?

—यदि आप इंदिरा जी की नजर में आ गए तो आपकी तरक्की भी हो सकती है। शायद आपको पता हो कि संजय गांधी से मेरी खूब पटती है। अच्छा, अब चलना चाहिए।"

"इसके बाद क्या हुआ ?"—मनोहर ने अत्यन्त व्यग्र होते हुए पूछा।

"इसके बाद केन्द्र निदेशक सरवर अली ने अपने निजी सहायक को बुलवाया और कहा—लिखिए—सरवर अली ने बोलना शुरू कर दिया—

सेवा में,

सिरी परभाकर कुमार,
कार्य करम अधिशासी [समनवय]
आकाशबानी

महाशय,

सिरी किशनकात के मरने पर आपने तेरह फरवरी की रात आठ बजे और चौदह फरवरी की सुबह साढ़े सात बजे जो दो प्रोग्राम पेश किये, उसके लिए आपने किससे इजाजत ली थी ? क्या आपको मालूम नहीं कि सिरी किशनकात शिरीमती इंदिरा गांधी के विरोधी रहे हैं और उन्होंने कभी इंदिरा-विरोधी सभी की सदारत भी की थी ? आकाशबानी की यह नीति रही है कि वह सरकार-विरोधी कोई भी प्रोग्राम प्रसारित न होने दे। इस नीति को जानते हुए भी आपने अपनी मर्जी से दोनों प्रोग्राम प्रसारित किए। सरकार की नजर में यह गंभीर मामला है।

आप बीस फरवरी की शाम पांच बजे तक यह लिखित सफाई दें कि अपनी ड्यूटी के परति लापरवाही बरतने और आकाशबानी की नीतियों के खिलाफ काम करने के जुर्म में आपको मुअत्तल कर देने की सिफारिश महा-निदेशक से क्यों नहीं की जाए ?

आपका विश्वासभाजन
[सरवर अली]
केन्दर निदेशक

हिन्दी ठीक कर लीजिएगा। जल्दी से इसे टाइप करके लाइए।"

"फिर क्या हुआ ?"—मनोहर बेचैन-सा होता जा रहा था।

"कोई पंद्रह मिनटों के भीतर पत्र टंकित हो गया। पत्र पढ़कर सरवर अली ने उस पर अपना हस्ताक्षर अंकित कर दिया। उसने अपनी कुर्सी से उठते हुए कहा—पी० ए० साहब, अब मैं घर जा रहा हूं। मेरे जाने के दस मिनटों के बाद आप यह खत परभाकर को थमा दीजिएगा। यदि यहाँ किसी किस्म की कोई गड़बड़ी नजर आए तो आप मुझे फौरन फोन पर इत्तिला दे दीजिएगा। आजकल के लौंडो का क्या ठिकाना है ?"

"इसके बाद ?"

"सरवर अली अपने कार्यालय से निकल गए। उनके निकलने के ठीक दस मिनटों के बाद उसके निजी सहायक ने प्रभाकर को लिफाफा थमाकर प्राप्ति-स्वीकृति करवा ली। प्रभाकर सोच रहा था कि शायद उसे प्रशंसा-पत्र मिला था। लिफाफे को खोलकर उसने पत्र पढा। उसके ऊपर तो मानो वज्रपात-सा हो गया। देखते-ही-देखते आकाशवाणी के कोने-कोने में यह बात फैल गई और आकाशवाणी-केन्द्र हो-हल्ला केन्द्र के रूप में बदल गया।"

"अंततः क्या हुआ ?"—मनोहर ने बेसब्री से पूछा।

"अंततः प्रभाकर को निलम्बित कर दिया गया। बस, आज इतना ही। इसके आगे अब और कुछ मत पूछो, मनोहर।"

पांच

"मनोहर, चौदह फरवरी को कुछ ऐसी घटनाएं घटित हुईं, जिन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि कृष्णकांत के मरने से नगर की चहल-पहल में कोई अंतर नही पड़ा है। अपने नगर से एक ही दैनिक समाचार-पत्र प्रकाशित होता है। इस दैनिक के साथ मेरे भावात्मक संबंध रहे हैं। लेकिन, यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इसमे मेरे निधन का समाचार एक कोने में प्रकाशित हुआ था। समाचार के साथ मेरा कोई चित्र भी नही था। जिन लोगों को यह आशा थी कि शव-यात्रा के चित्र इस दैनिक में प्रकाशित किये जायेंगे, उन्हें बहुत निराशा हुई। विशेषकर सावरिया को तो बड़ा ही क्लेश हुआ। आकाशवाणी के द्वारा सुबह को आठ बजे जो बुलेटिन दिल्ली से प्रसारित किया जाता है, मुझे विश्वास था कि उसमें मेरी मृत्यु की खबर जरूर दी जाएगी। पर, ऐसा नही हुआ।"

"अगली घटना क्या है ?"—मनोहर ने पूछा।

"दूसरी घटना यह हुई कि हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० सोमनाथ का विश्वविद्यालय के छात्रों ने घेराव किया। विद्यार्थियों का कहना था—कल कृष्णकांतजी का देहावसान हो गया है। आज विभाग में एक शोक-सभा होनी चाहिए।"

"तब डॉ० सोमनाथ ने क्या किया ?"

"डॉ० सोमनाथ बहुत चालू निकले। उन्होंने स्थिति को भाँप लिया और तुरत कहा—मुझे अभी इसी समय हवाई-अड्डे जाना है। मैं डॉ० सिंह से कह देता हूं। वह शोक-सभा आयोजित करवा लेंगे। इस पर एक छात्र ने कहा—आपका रहना बहुत जरूरी है।—यह सुनते ही डॉ० सोमनाथ अपनी कुर्सी से उठकर खड़े हो गये। उन्होंने कलाई घड़ी की ओर देखते हुए कहा—देर हो रही है। मेरा रुकना संभव नहीं है।

—यह बोलकर वह बाहर आ गये। शिक्षक सदन से उन्होंने डॉ० सिंह को बुलाया और उनसे कुछ कहा। इसके बाद वह अपनी कार की ओर बढ़ गये। एक बात बताऊं, मनोहर ?"

"जी, बताइये।"

"डॉ० सोमनाथ ने अपने छात्रों के सामने यह झूठ कहा था कि उन्हें हवाई अड्डे जाना है। वह विभाग से निकलकर सीधे अपने घर आ गए। असलियत यह है कि वह मेरी शोक-सभा में सम्मिलित होने से बचना चाह रहे थे।"

"डॉ० सोमनाथ आखिर आपसे क्यों इतने चिढ़े रहा करते हैं।" मनोहर ने कारण पूछा।

"कारण तो कई हैं। एक कारण अभी ही बता देता हूं।"

"बताइए।"

"इस नगर में यदि कोई साहित्यकार बाहर से आता, तो वह मुझसे जरूर मिलता। लेकिन, डॉ० सोमनाथ की ओर कोई रुख भी नहीं करता। जब डॉ० सोमनाथ को यह मालूम होता कि फलां लेखक आए हुए थे और उन्हें कृष्णकांत के घर पर देखा गया था, तो उन्हें बड़ी जलन होती थी। बाहर से आनेवाले साहित्यकार यदि डॉ० सोमनाथ से नहीं मिलते तो इसमें डॉ० सोमनाथ को अपना बड़ा अपमान मालूम होता। डॉ० सोमनाथ, मेरे जानते, कहीं-न-कहीं इस भ्रांत धारणा के शिकार रहे हैं कि आलोचक बड़ा होता है और लेखक उससे छोटा। पर, वह देखते कि उन जैसे महान् आलोचक की तुलना में मुझ जैसे लेखक का सम्मान कहीं ज्यादा है, फलतः यह बराबर मेरे विरुद्ध रहते और कुछ-न-कुछ ऐसी बात जरूर कह जाते कि

वैसा कहने से दूसरों की निगाह मे वह और भी ओछे हो जाते थे।"

"हिन्दी विभाग मे जो शोक-सभा होनेवाली थी, उसका क्या हुआ ?"

"हां, अब मैं उसी प्रसंग पर आता हूं। हिन्दी विभाग मे डॉ० सिंह ने शोक-सभा आयोजित की। वह मेरे प्रशंसक रहे हैं। उन्होने लगभग पंद्रह मिनटो का एक संक्षिप्त भाषण दिया, जिसमे मेरे समग्र कृतित्व का उल्लेख और मूल्यांकन था। उनके बाद तीन-चार और प्राध्यापकों ने भाषण दिए। वे केवल मेरी प्रशंसा कर रहे थे। वे बेचारे बोलते भी क्या ? इन लोगों ने मेरी कोई रचना पढी ही नही थी। उन्हे बस इतना मालूम था कि कृष्णकांत नामक एक लेखक है, जो काफी चर्चित माना जाता है और संयोग से वह इसी शहर का निवासी था। इनके भाषणो के दौरान अधिकांश विद्यार्थी और शिक्षक भी काफी खुश नजर आ रहे थे।

"ऐसा क्यो ?"—मनोहर पूछ बैठा।

"वे खुश थे कि इनके भाषण जल्द ही खत्म हो जाएंगे और फिर उन्हे मुक्ति मिल जाएगी। छुट्टी मिलने के बाद वे कोई फिल्म भी देख सकेंगे। दो शिक्षक तो पूरी सभा के बीच यही बात करते रह गए कि किस हॉल मे जाना ठीक रहेगा। अंत में यह तय हुआ कि वे लोग मलयालम फिल्म 'रति निर्वेदम्' देखने जाएंगे।"

"अच्छा! हिन्दी विभाग में मलयालम जाननेवाले शिक्षक भी हैं क्या?"—मनोहर ने चौंकते हुए यह सवाल पूछा।

"नही तो।"

"फिर वे मलयालम फिल्म जाने की योजना कैसे बना रहे थे ?"—मनोहर ने फिर सवाल किया।

"मनोहर, सेक्सी फिल्मों को समझने के लिए किसी भी भाषा की जरूरत नही होती।"

"ओ, तो यह बात है। अब मैं समझा। अब आगे की बात बताइए।"

"शो का समय दो बजे था। उस समय साढ़े बारह बज रहे थे। वे दोनों प्राध्यापक वक्ता को जरा जलती निगाहो से देख रहे थे और भीतर-ही-भीतर कुढकुडा रहे थे। छात्राएं भी बार-बार अपनी कलाई मे बंधी घड़ियो की ओर देख रही थीं। वे भी किसी फिल्म के बारे मे ही विचार-विमर्श कर रही थीं। भाषणबाजी भी चलती रही और समानान्तर रूप से फिल्म-दर्शन की योजना भी बनती रही। अंत मे दो मिनटो तक मौन रहने की घड़ी आयी। लोगो ने एक मिनट मे ही मौन भंग कर दिया। डॉ० सिंह ने कहा—अब सभा विसर्जित की जाती है—यह कहना था कि लोग इस प्रकार भाग खड़े हुए मानो उनके पैरों मे पहले से ही चक्के बंधे हुए थे। देखते-ही-देखते

विभाग निर्जन हो गया। केवल विभाग का चपरासी अकेला बच गया था—कमरों में ताला जड़ने के लिए। किसी का मरना भी लोगों के लिए कैसा वरदान हो जाता है, उस दिन मैंने पहली बार देखा। यह भी उसी दिन जाना कि दुनिया में कोई मरे इससे किसी को कुछ लेना-देना नहीं है। लोगों को इतनी फुर्सत भी नहीं कि दिवंगत आत्मा की शांति के लिए वे पूरे दो मिनट का समय भी निकाल सकें।"

"और भी कोई घटना है, क्या ?"—मनोहर ने कौतूहल के साथ पूछा।

"हां, एक महाविद्यालय में एक और घटना हो गई।"

"क्या ?"

"छात्रों ने अपने प्राचार्य से जाकर कहा—सर, कल कृष्णकांतजी का देहान्त हो गया, अतः आज एक शोक-सभा की जानी चाहिए और उसके बाद कक्षाओं को स्थगित कर देना चाहिए।—इस पर प्राचार्य के साथ छात्रों की बहस ही छिड़ गयी। लो सुनो बातचीत—

—कौन कृष्णकांत ? मैं किसी कृष्णकांत को नहीं जानता।—प्राचार्य ने हिकारत के साथ कहा।

—ताज्जुब है, आप कृष्णकांतजी को नहीं जानते ?—छात्रों ने एक स्वर में कहा।

—कौन थे वह ?

—वह हिंदी के एक बड़े लेखक थे। इसी शहर के निवासी थे।—एक छात्र ने बताया।

—अच्छा, मगर क्लास क्यों ससपेंड होना चाहिए ?

—कृष्णकांतजी की मृत्यु से हिंदी साहित्य की बहुत बड़ी हानि हुई है। इतने बड़े लेखक के मरने पर भी यदि कक्षाएं स्थगित नहीं रहेंगी, तब कब स्थगित की जाएंगी ?—दूसरे छात्र ने आवेश में पूछा।

—हर दिन कोई-न-कोई हिंदी वाला मरता ही रहता है। कभी पंत मरता है, तो कभी दिनकर, कभी जसपाल मरता है तो कभी द्विवेदी तो क्या हर दिन क्लास ससपेंड कर दिया जाए ? नहीं, क्लास ससपेंड नहीं किया जायेगा।—प्राचार्य ने बड़े क्रोध में कहा।

एक छात्र ताव में आ गया। उसने आगे बढ़कर प्राचार्य से कहा—शटअप। आप अगरेजी के हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि आप हिंदी के साहित्यकारों का अपमान करें। आप अगले सात जन्मों में भी नहीं जान सकते कि सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह दिनकर, यशपाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और कृष्णकांत कितने बड़े साहित्यकार थे और उन्होंने अपनी भाषा, अपने देश और अपनी संस्कृति की कितनी अमूल्य सेवा की है।"

"इसके बाद क्या हुआ ?" मनोहर ने बेसब्री के साथ पूछा।

"इतना बोलकर वह छात्र प्राचार्य के कक्ष से बाहर आ गया। अन्य छात्र भी बाहर आ गए। यह बात चारों ओर फैल गई कि प्राचार्य ने हिंदी के साहित्यकारों के लिए अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया है। छात्र आवेश में आ गए। विद्यार्थियों ने कक्षाओं का बहिष्कार करना शुरू कर दिया। प्राय. सभी छात्र मैदान में जमा हो गए। इन लोगों ने प्राचार्य के विरुद्ध नारेबाजी शुरू कर दी। जब शिक्षकों को यह बात मालूम हुई तो वे लोग भी प्राचार्य के खिलाफ हो गए। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए प्राचार्य ने मैदान में आकर छात्रों के समक्ष अपनी भूल स्वीकार की और क्षमा मांगी।"

"फिर ?"

"फिर प्राचार्य ने खुद शोक-प्रस्ताव रखा और शोक-सभा का संचालन भी किया। शोक-सभा के बाद कक्षाएं स्थगित कर दी गईं।"

"और भी कोई उल्लेखनीय घटना है, क्या ?"

"हां, है। तुम्हें तो पता है कि अपने नगर में कोई साहित्यिक मंच नहीं है। दो-तीन उत्साही युवकों ने मिलकर मेरी दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि प्रदान करने के लिए एक योजना बना डाली। उन्होंने भजन मंडप का हॉल इस काम के लिए ले लिया। तुम्हें पता ही है कि इस हॉल में करीब एक हजार आदमी मजे में बैठ सकते हैं। लोग अधिक-से-अधिक बैठ सकें, अतः हॉल में दरियां बिछा दी गईं। पूरे नगर में दिन भर लाउड-स्पीकर घूम-घूमकर चिल्लाता रहा—आज शाम को छह बजे भजन मंडप में एक शोक-सभा होगी, जिसमें भारत के प्रख्यात लेखक स्व० कृष्णकांतजी को नागरिक श्रद्धांजलि अर्पित की जाएगी। आपको पता ही है कि कृष्णकांतजी इसी नगर के निवासी थे और कल उनका देहान्त हो गया—प्रचार तथा प्रबंध को देखकर मुझे लगा कि मेरी दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि देने के लिए शायद हजारों नागरिक आएंगे। पर, ऐसा नहीं हुआ। शाम को छह बजे केवल आठ व्यक्ति आए। सात बजे तक दस व्यक्ति और आ गये। साढ़े सात बजे शोक-सभा शुरू हुई। उस समय भजन मंडप के विशाल हाल में केवल चौबीस व्यक्ति मौजूद थे। आकाशवाणी का कोई प्रतिनिधि नहीं था। केवल एक हिंदी पत्रकार दिखाई पड़ा। शिक्षक केवल तीन ही थे। एक को सभा की अध्यक्षता करनी थी। शेष दो शिक्षक आज के वक्ता थे।"

"मनोहर, जिस नगर की आबादी पांच लाख है, उस नगर के नागरिकों की ओर से मेरी दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की जा रही थी और

उस शोक-सभा में केवल दो दर्जन आदमी गिनकर उपस्थित थे। मनोहर, जरा प्रतिशत निकाल कर बताओ कि इस नगर के कितने प्रतिशत लोगों ने मेरी आत्मा की शांति के लिए श्रद्धांजलि अर्पित की। एक वह भी तमाशा था, जिसे मैंने देखा भी और झेला भी। अगर मैं एक लेखक न होकर किसी गली का एक कुत्ता भी होता तो मेरे मरने पर दो दर्जन से अधिक कुत्ते समवेदना प्रकट करने के लिए मेरी लाश के पास एक बार जरूर आते। खैर, छोड़ो, इस प्रसंग को। आज इतना ही।"

छह

"मनोहर, तुम्हे याद होगा वह दृश्य ?"

"कौन-सा दृश्य ?"—मनोहर ने पूछा।

[illegible]

[illegible]

[illegible] दी थी। उसकी आंखों से आंसू झर-झर बह रहे थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस दिन किसी भी पुरुष ने उतने आंसू नहीं बहाये थे, जितने कि उसने बहाये थे। तुम्हें तो पता है कि वह इस नगर का एक प्रमुख प्रकाशक है और उसका नाम विद्यासागर है। इसी शहर में उसकी चार-चार कोठियां हैं और एक बहुत बड़ा आधुनिक प्रेस है। इसी ने मेरी पांच किताबें छापी हैं, जो राज्य के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इंटर या बी० ए० के पाठ्य-क्रम के लिए स्वीकृत थीं।"

"जी, विद्यासागरजी को मैं जानता हूं।"—मनोहर ने बताया।

"[illegible]

सुना है [illegible]

था यों [illegible]

मेरा प्रकाशक भी अपवाद नहीं है।

"क्या विद्यासागरजी ने भी आपको धोखा दिया ?"—मनोहर का प्रश्न था।

"धोखा ! यह शब्द कुछ हल्का पड़ रहा है। विद्यासागर ने मेरे साथ जो किया उसके लिए अभी मुझे कोई उपयुक्त शब्द नहीं सूझ रहा है।"

"क्या किया विद्यासागरजी ने ?"—मनोहर ने सवाल किया।

"आज से पांच वर्ष पहले की बात है।"—इसके साथ ही कृष्णकांत-जी की एक गहरी सांस की आवाज सुनाई पड़ी।

"जी।"

"मेरी किताबें विश्वविद्यालयों में स्वीकृत थी, अतः उनकी अच्छी बिक्री हो रही थी। मेरे हिसाब से मुझे हर वर्ष कम-से-कम पंद्रह हजार रुपए की रायल्टी मिलनी चाहिए थी। मगर, ऐसा क्यों होने लगा? एक दिन मैं अपने प्रकाशक के पास गया। बहुत दिनों के बाद उसके पास गया था। प्रकाशक ने अपने कार्यालय का रूप ही बदल दिया था। उसका निजी कक्ष देखकर तो मुझे लगा कि मैं स्वर्ग में पहुंच गया हूं। वातानुकूलित कमरा। साज-सज्जा अत्याधुनिक। कमरे में केवल एक ही चित्र टंगा था—महात्मा गांधी का। पता नहीं प्रकाशक ने केवल महात्मा गांधी का ही चित्र क्यों टांग रखा था? वह गांधी का भक्त तो था नहीं। हां, वह अपने लेखकों को महात्मा गांधी के समान लंगोटी वाला जरूर बना देता था, शायद इसीलिए उसने केवल महात्मा गांधी का ही चित्र टांग रखा था।"

"हां, यही बात होगी।"—मनोहर ने समर्थन व्यक्त किया।

"मुझे देखते ही प्रकाशक यानी विद्यासागर ने मेरे स्वागत में अपनी कुर्सी छोड़ दी। ऐसा लगा कि उसके कमरे में 'लक्ष्मीजी' अवतरित हो गयी है और वह उनके पूजन के लिए एकाएक अत्यंत नम्र हो गया है। बड़े ही दबे और कृतज्ञतापूर्ण लहजे में उसने कहा—धन्य भाग्य मेरा, जो आप स्वयं मेरे कक्ष में आए। आइए, आइए। विराजिए इस कुर्सी पर।—यह बोल कर विद्यासागर अपनी कुर्सी छोड़ कर बगल में खड़ा हो गया। मैं बड़े सकोच में पड़ गया। मैं भला प्रकाशक की कुर्सी पर कैसे बैठता? मैं नहीं-नहीं करता रहा और विद्यासागर ने जबर्दस्ती मुझे अपनी कुर्सी पर बिठा दिया। मैं कुर्सी पर गिरा और कुर्सी कमरे का एक बार पूरा चक्कर लगा गयी। मैं हक्का-बक्का प्रकाशक की ओर देखने लग गया। विद्यासागर ने कुर्सी की बाह को थामते हुए हसकर कहा—रिवालविंग है न, इसीलिए घूम गयी।"

"तब फिर क्या हुआ?"

"मैं तो जरा डर-सा गया था। तब मैंने समझा कि डरने की कोई वजह नहीं थी। प्रकाशक मेरे सामने की कुर्सी पर बैठ गया। उसने घंटी का बटन दबाया। तुरत चपरासी आ गया। विद्यासागर ने चपरासी की तरफ एक पुर्जा सरका दिया। अब उसने बातचीत शुरू की—पिछले कई ... मैं हर दिन आपको ही याद कर रहा था।

—अच्छा ! खबर क्यों नहीं भिजवा दी ? मैं चला आता।—मेरा जवाब था।

—मैं सोच रहा था कि मैं ही जाऊंगा आपके पास। पर, क्या करूं, इस कक्ष मे आने के बाद यहा से निकलना मुश्किल हो जाता है। बेहद व्यस्तता रहती है।—विद्यासागर ने कहा।

—आदमी को व्यस्त रहना ही चाहिए। कोई विशेष बात थी क्या ?

—मन में एक इच्छा जगी है। मैट्रिक के लिए मैं एक किताब चाहता हूं।

—कैसी किताब ?

—राष्ट्र के सपूत। इसमें देश के सपूतों की प्रेरणादायक जीवनिया रहेंगी। आपका नाम और मेरा परिश्रम यदि दोनों मिल जाए तो यह किताब जरूर लग जाएगी। किताब के लग जाने का मतलब है कि हर साल कम-से-कम एक लाख का सस्करण तो छप ही जाएगा और आपके हिस्से लगभग चालीस-पैंतालीस हजार आ ही आएंगे।

—योजना तो काफी अच्छी है।

—बस, आपका आशीर्वाद चाहिए।

चपरासी लौट कर आ गया। उसके हाथ मे एक बडी-सी ट्रे थी। ट्रे में तरह-तरह की मिठाइया और एक प्लेट मे नमकीन काजू थे। शीशे के बहुत ही खूबसूरत गिलास मे कोई रगीन पेय था। गिलास मेरी ओर सरकाते हुए विद्यासागर ने बडे प्रेम से कहा—अंगूर का विशुद्ध रस है।—सब कुछ देख कर मैं भीतर-ही-भीतर दंग था। मैं समझ नहीं पा रहा था कि उस दिन क्यो मेरी इतनी आवभगत की जा रही थी। मैंने दो-चार काजू उठा लिए। इस पर विद्यासागर ने बडी श्रद्धा के साथ अनुरोध किया—नहीं, नहीं, केवल दो-चार काजू उठा लेने से आज काम नहीं चलेगा। यह सब कुछ आपके ही लिए हैं।

—और आप ?—मैंने पूछा।

—आपको शायद पता नहीं कि डॉक्टर ने मीठा खाने की बिलकुल मनाही कर दी है। अब तो मैं केवल दो सूखी रोटियां और उबली हुई सब्जियां ही लेता हूं।—विद्यासागर ने बताया।

विद्यासागर ने थोड़ा-थोड़ा सब कुछ लेने के लिए मुझे विवश कर दिया। अंगूर का रस पूरा पीना पड़ा। मेरे खा-पी लेने पर विद्यासागर ने अत्यंत प्रसन्न मुद्रा में मुझे बताया—इस बार आपकी सात हजार रायल्टी बनी है।

मैंने तुरत समझ लिया कि वह आधा सच बोल रहा था, पर मैं कर भी क्या सकता था ? मैंने कृत्रिम मुस्कराहट के साथ कहा—ठीक ही है।

—आदेश दें तो मैं रुपए नकद ही दिलवा दू। आपको कोई असुविधा नही हो तो चेक भी दिया जा सकता है।

मैं कुछ सोचने लगा। थोड़ी देर ठहर कर मैंने कहा—विद्यासागरजी, आप तो जानते ही हैं कि मेरी दो बेटिया भी हैं। उनके विवाह की चिंता बराबर सताती है। आप ऐसा करें फिलहाल आप मुझे एक हजार रुपए दे दें। छह हजार रुपए आप मेरे नाम अलग जमा कर लें। मैं हर वर्ष इसी प्रकार रायल्टी से कुछ बचाना चाहता हूं। शादी के समय ये रुपए मैं आपसे ले लूगा।

—क्यों नही, आप जैसा चाहेंगे वैसा ही होगा। आपकी बेटिया क्या मेरी कुछ नही लगती है ? वे मेरी बेटियां भी है। पर, एक निवेदन है।

—हा, हां, कहिए।—मैंने कहा।

—मैं आपके रुपए अपने पास बतौर कर्ज रखूगा, इसलिए आपको नौ प्रतिशत ब्याज स्वीकार करना होगा।

—जैसी आपकी इच्छा।

"इसके बाद क्या हुआ ?"—मनोहर ने बेचैनी के साथ पूछा जैसे कि उसे कोई आशंका सता रही थी।

"उस दिन मैंने विद्यासागर से एक हजार रुपए नकद ले लिए। उसने मेरी ओर सात हजार रुपए की रसीद सरका दी। जब मैंने उसकी ओर देखा तो उसने कहा—आप तो जानते ही है कि हमें हर साल इनकम टैक्स मे हिसाब दिखाना पडता है। बस, इसीलिए यह रसीद जरूरी है। मगर, आप जरा भी चिंता न करें। आपके बाकी रुपए मेरे पास ठीक-ठाक रहेंगे। जब जी मे आए, आप अपने रुपए ले जा सकते हैं। आपकी अमानत मेरे पास बराबर सुरक्षित रहेगी।"

"फिर क्या हुआ ?"

"मैं विद्यासागर की बातों मे आ गया। इस प्रकार हर वर्ष मैं उसके पास पाच-छह हजार रुपए जमा करता गया। इसकी सूचना मैंने किसी को भी नही दी। अपनी पत्नी कमला को भी नही। मैं लकवाग्रस्त हो गया, तब भी मैंने उन रुपयों को हाथ नही लगाया; क्योंकि वे रुपए संगीता और विनीता की शादी के लिए जमा किए गए थे।"

"फिर क्या हुआ ?"

"मनोहर, जो हुआ उसे याद करके आज भी मेरी आत्मा कराह उठती है। विद्यासागर को सूचना मिली कि मेरा निधन हो गया है। यह

जानने के बाद उसने तुरत अपने मुनीम को बुलाया और उसे समझा कर कहा—मुनीमजी, आज कृष्णकातजी का देहात हो गया है। आप तो जानते ही हैं कि उनके घर की हालत कितनी खस्ता है। दोनों बेटे सड़क छाप हीरो हैं। मेरा अनुमान है कि उनके घर से कोई-न-कोई रुपए मांगने के लिए आज या कल जरूर आयेगा। आप आज शाम तक उनका हिसाब-किताब दुरुस्त कर लीजिए। अभी मुझे उनके घर जाना होगा।"

"तब ?"— मनोहर ने उतावली के साथ पूछा।

"मेरे युवराज अमर को पीने की लत है। किसी ने उसके दिमाग मे यह बात घुसा दी है कि कुछ बनने के लिए पीना बहुत जरूरी है। इसी कारण वह कुछ बनने के लिए पीता भी है। चौदह फरवरी को जिस दिन शाम के समय भजन मडप के हॉल मे कुछ लोग मुझे श्रद्धाजलिया अर्पित कर रहे थे, मेरा युवराज विद्यासागर के कक्ष मे बैठा हुआ था।"

"वहा क्या हुआ ?"

"विद्यासागर ने अमर के अनाथ हो जाने पर अपनी संवेदना प्रकट की और बडी नम्रता के साथ पूछा—कहो अमर, मेरे लायक कोई सेवा हो तो निस्सकोच कहो। कृष्णकातजी नही रहे तो ऐसा मत समझना कि पिछले सारे रिश्ते टूट गए।"

"अमर ने क्या कहा ?" मनोहर का सवाल था।

"मेरे युवराज ने कहा—पिताजी की रायल्टी की जो राशि निकलती है, वह मुझे दे देने की कृपा करें। आप जानते ही हैं कि अभी हजार तरह के खर्चे हैं।"

"इस पर विद्यासागर ने क्या जवाब दिया ?"—मनोहर ने आगे पूछा।

"विद्यासागर ने कहा—बिलकुल ठीक। मैंने मुनीमजी से कल ही कह दिया था हिसाब निकाल देने के लिए। मैं बुलवाता हू उन्हें।"

"फिर ?"

"विद्यासागर ने बटन दबाया। बाहर घटी घनघना उठी। चपरासी आया। विद्यासागर ने कहा—जाओ, मुनीमजी को कहना कि वह कृष्ण-कातजी का खाता लेकर आएं। जल्दी। कुछ देर के बाद मुनीमजी अपने खाते के साथ प्रकट हुए। विद्यासागर ने मेरे युवराज का परिचय करवाते हुए कहा—मुनीमजी, आप स्वर्गीय कृष्णकातजी के बडे सुपुत्र अमर हैं। ये बडे सफल अभिनेता हैं। देखिएगा, कल को ये अमिताभ बच्चन से भी बडे कलाकार हो जाएगे। यह मेरी भविष्यवाणी है।"

"इसका अमर पर क्या असर हुआ ?"—मनोहर ने जानना चाहा।

"अपनी झूठी प्रशंसा सुन कर मेरा युवराज गुब्बारे की तरह फूलने लगा। मुंशीजी ने अमर को नमस्ते कही, पर अमर दंभ के कारण उत्तर भी नही दे सका।"

"फिर ?"

"विद्यासागर ने फिर कहा—इन्हे कृष्णकांत का हिसाब समझा दीजिए और जो रायल्टी उनके नाम निकलती है, उसका अभी तुरत भुगतान कर दीजिए। इस पर मुनीमजी ने तपाक से कहा—कृष्णकांतजी की कोई रायल्टी नही निकलती है, बल्कि उन्होने एक हजार रुपए पेशगी ले रखी है।—यह सुन कर मेरा युवराज एकाएक चीख पड़ा—यह क्या बोल रहे हैं, आप ?"

"तब ?"

"विद्यासागर ने बड़े प्यार से पुचकारते हुए मेरे युवराज को समझाया—अमर, इसमे गुस्सा होने की कोई बात नही है। जो हिसाब है, वह तुम्हारे सामने है। कृष्णकांतजी ने जो रुपए लिए हैं, उनकी रसीदें हमारे पास हैं। चाहो तो देख लो।"

"इसके बाद ?"

"मेरा युवराज ठंडा पड़ गया। मुनीमजी ने हिसाब समझाना शुरू कर दिया। रसीदों को देख कर अमर भीतर-ही-भीतर खौलने लगा। उसने क्रोध के साथ कहा—आप तो पिताजी को हर साल सात-आठ हजार रुपए रायल्टी के रूप मे देते थे, लेकिन उन्होंने कभी भी इसका जिक्र घर मे नही किया ? क्या हो गए ये रुपए ?"

"विद्यासागर ने क्या जवाब दिया ?"—मनोहर ने बड़े तेवर के साथ पूछा।

"विद्यासागर ने एक सफल अभिनेता की तरह अपने भीतर के तूफान को दबाते हुए कहा—इस शहर मे दर्जनों बैंक हैं। हो सकता है, उन्होंने किसी बैंक मे ये रुपए जमा कर छोड़े हो।"

"फिर ?"

"मेरे युवराज ने प्रतिवाद करते हुए कहा—नही, यदि ऐसी बात होती तो कम-से-कम मां को यह बात जरूर मालूम होती। इसके बारे मे मां को भी कुछ पता नहो है।"

"विद्यासागर ने क्या कैफियत दी ?"

"विद्यासागर ने कैफियत देते हुए कहा—अमर, मैं तो उन्हें नकद रुपए दे दिया करता था। रसीदें प्रमाण के रूप में तुम्हारे सामने हैं। यहा लेन-देन में कोई हेरा-फेरी नही की जाती है। देखो, इस खाते पर

कर अधिकारी के हस्ताक्षर भी हैं।"

"अमर ने इस पर क्या कहा ?"

"मेरे युवराज ने कहा—मुझे आप पर कोई सदेह नही है। परेशानी की बात सिर्फ यह है कि पिताजी ने आखिर इतने सारे रुपयों का किया क्या ? उन्हे तो किसी चीज की लत भी नही थी। वह शराब पीते नही थे, सिनेमा देखते नही थे, जुआ खेलते नही थे, कोठे पर जाते नही थे। उन्हे तो केवल दो चीजों की आदत थी—चाय की और बीडी की और चाय और बीड़ी पर हजारो हजारो रुपए खर्च नही किए जा सकते।"

"विद्यासागर ने कुछ कहा ?"

"विद्यासागर तो अमर को बडे ध्यान से देख रहा था। उसने कृत्रिम सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहा—अमर बाबू, मैं आपकी मानसिक स्थिति समझ रहा हूँ। खैर, चिंता करने की कोई बात नही है। कृष्णकांत-जी नही रहे तो क्या हुआ ? मैं तो हू। मुनीमजी, अमर बाबू को आप दो हजार रुपए अभी तुरत दे दीजिए। इन रुपयो को आप मेरे नाम पर लिख लीजिए। अमर बाबू से किसी प्रकार की रसीद लेने की कोई जरूरत नही है।"

"फिर ?"

"विद्यासागर ने पहली बार अमर को अमर बाबू कहा था और अब वह अमर को तुम नही बल्कि आप बोल रहा था, इसलिए मेरा युवराज तो गद्गद् हो गया था। दो हजार रुपए की बात सुनने के बाद तो वह विद्या-सागर का पालतू कुत्ता ही गया था। वह विद्यासागर के सामने एक भिखारी की तरह गिडगिड़ाने लगा—आज आपने मेरी जो सहायता की है, उसे मैं आजीवन याद रखूगा। आज मुझे यह विश्वास हो गया कि धरती अभी दयावानो से खाली नही हुई है। आज भी इस धरती पर एक-से-एक परोपकारी एव सदाचारी हैं।"

"तब विद्यासागर ने क्या कहा ?"

"विद्यासागर ने कुछ भी नही कहा। वह अपनी इस सफलता पर एक खलनायक के समान कक्ष में अपनी क्रूर मुस्कराहट बिखेर रहा था। आज वह बहुत खुश था। उसने बैठे-बिठाए मेरी अमानत को डकार लिया। सुन रहे हो न, मनोहर ?"

"जी।"

"मैं तुम्हें बता नही सकता कि जब विद्यासागर मुस्करा रहा था, तब मेरी आत्मा पर क्या बीत रही थी। उस समय के भावो को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए मेरे पास सही अल्फाज नही हैं। इच्छा हुई कि मैं

किसी प्रकार उसी समय विद्यासागर के कक्ष मे प्रकट होकर उसकी पोल खोल दू, मगर मैं लाचार था। हर आत्मा के साथ कुछ बंधन होते हैं। इन्हीं बंधनो के कारण मैं विद्यासागर के सामने प्रकट नही हो सका। बेईमान विद्यासागर मेरे पाच वर्षों की सचित कमाई के तैंतीस हजार रुपए चुपचाप पचा गया। वह मुझे नौ प्रतिशत ब्याज देने वाला था। जो मूल ही खा गया, उससे सूद की क्या आशा की जाती? मैं ही बेवकूफ था जो उस दिन उसकी चक्कर-घिरनी कुर्सी पर बैठकर अपना होशोहवास खो बैठा था और उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों मे फंसकर रह गया था! काश! उन रुपयो को मैंने किसी बैंक में जमा कर दिया होता तो विद्यासागर मेरे साथ ऐसा विश्वासघात तो नहो कर पाता।"

"गलती आपसे ही हुई।"—मनोहर ने स्पष्ट शब्दों में कहा।

"हा मनोहर, मनुष्य पर विश्वास करने की गलती मैंने अपने जीवन मे बराबर की थी, मैं अपनी यह गलती स्वीकार करता हूं। शायद इसी कारण मैं विद्यासागर के द्वारा भी छला गया। खैर, कोई बात नही। मेरा भला नहीं हो सका तो क्या हुआ? विद्यासागर की गरीबी कुछ कम हो गई होगी —मेरे लिए यही सतोष की बात है। मेरा धन किसी के काम तो आया?"

सात

"मनोहर, मैंने अपने जीवन-काल मे कभी भी ऐसा अनुभव नही किया था कि मै कुछ लोगों की प्रगति के मार्ग का काटा भी हूं। अपने निधन के डेढ़-दो महीनों के बाद मुझे यह जानकारी मिली कि अपने जीवन-काल मे मैं बहुतों के लिए काटा बना हुआ था। ऐसे लोगों को मेरी मृत्यु से जरा भी तकलीफ नही हुई। सच्ची बात तो यह है कि मेरे मरने से अपार प्रसन्नता ही प्राप्त हुई। यह भी कहा जा सकता है कि वे लोग मेरी मौत की प्रतीक्षा ही कर रहे थे।"

"ऐसे नीच कौन लोग हो सकते है? मुझे तो ऐसे लोगों की कोई जानकारी नही है।"—मनोहर ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"मनोहर, इस नगर में ऐसे कई लोग हैं। मैं भी इनके बारे मे ठीक-ठीक नही जानता था। मेरी भटकती हुई आत्मा एक दिन डॉ० उदयप्रकाश के घर के पास से गुजर रही थी। लगा कि कमरे के भीतर मेरे बारे मे ही बातें हो रही हैं, अतः मेरी आत्मा वहां ठहर गई। उसने वहां जो देखा और

सुना उसका खुलासा इस प्रकार है—

"डॉ० उदयप्रकाश विश्वविद्यालय मे हिन्दी के प्राध्यापक है। उनके ड्राइंग रूम मे चार और व्यक्ति बैठे हुए थे। डॉ० उदयप्रकाश के ठीक सामने एक युवक बैठा था गोरा-सा। लम्बा कद। रेणु-टाइप घुंघराले बड़े-बड़े केश। आंखो पर मोटी फ्रेम का चश्मा। नाम शैलेश्वर। यह अपने को कथाकार मानता है। इसका वास्तविक नाम कुछ और है, पर किसी ज्योतिषी के कहने पर इसने अपना नाम बदल दिया है। ज्योतिषी ने इससे कहा था—यदि कथाकार के रूप मे प्रसिद्ध होना चाहते हो तो तुम्हे ऐसा नाम रखना चाहिए जिसके पीछे 'ईश्वर' शब्द का योग अवश्य हो। जैसे कमल+ईश्वर—कमलेश्वर। यदि कमलेश्वर ने अपना नाम ऐसा नही रखा होता तो उसे ख्याति कभी नही मिलती। नतीजा यह हुआ कि हिन्दी के भाग्य खुल गए और उसे कमलेश्वर के अलावा एक शैलेश्वर भी प्राप्त हो गया। बदकिस्मती से बेचारा लिखता बहुत है, पर छपता नही के बराबर है।

"उसी की बगल मे ठिगना-सा अधेड़ व्यक्ति जो बैठा है, उसका नाम है किशोर मुरादाबादी। नाम बड़ा भ्रामक है। है वह अधेड़ और नाम रख छोड़ा है—किशोर। मुरादाबादी शब्द से ऐसा लगता है कि इसका जन्म मुरादाबाद मे हुआ होगा। लेकिन ऐसी कोई बात नही है। इसके काले चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े दाग हैं, फलतः लोगो ने इसे मुरादाबादी बर्तन कहना शुरू कर दिया था। पहले तो वह इस नाम से काफी चिढ़ता था। मगर, अब लोग उसे इसी नाम से पुकारते हैं और उसे भी यह नाम पसन्द आने लग गया है। मुरादाबादी कहानिया लिखता है। अब तक वह अपने खर्चे से पाँच कहानी-संग्रह छपवा चुका है। इन संग्रहों मे सब कुछ है, पर केवल कहानी ही नही है।

डॉ० उदयप्रकाश के बायें सोफे पर जो कार्टूननुमा आदमी बैठा था और जिसके बाल बिलकुल काँटे की तरह खड़े रहा करते हैं, उसका नाम है पतझड बनारसी। पतझड़जी हास्य कवि हैं और अपने को काका हाथरसी का शिष्य बताते हैं। इन पर यह आरोप है कि ये कवि सम्मेलनों में काका हाथरसी की रचनाए अपने नाम से सुना दिया करते हैं और अपने लिए रुपये और वाहवाही दोनो बटोर लिया करते हैं।

"पतझड बनारसी के ठीक सामने और डॉ० उदय प्रकाश के दाहिने जगदीश विद्रोही बैठे थे। उम्र लगभग सत्तावन-अट्ठावन वर्ष। अच्छी काठी। साल के सभी महीनो मे इंग्लिश सूट पहनते हैं। गले में बराबर बो लगाते हैं। अधरों के बीच बराबर सिगार सुलगता रहता है। ये कवि

हैं। उपनाम तो 'विद्रोही' है, लेकिन इनकी कविताओं में केवल इश्क का ही जोर रहता है। अपने जीवन मे विद्रोहात्मक कविताएँ इन्होंने कभी नहीं लिखी। बड़े शात स्वभाव के सज्जन हैं।

"पतझड़ बनारसी ने बात का सिलसिला चालू करते हुए कहा—कोई कुछ भी कहे, मैं तो यही मानता हूँ कि कृष्णकांत एक वटवृक्ष था। जिस प्रकार वटवृक्ष के नीचे कुछ भी पनप नही पाता, उसी प्रकार उसके रहते यहां के किसी साहित्यकार की प्रगति नही हो सकी। अब वह नही है, अब देखना कि इस शहर के लेखकों और कवियों की मांग कैसी बढती है।

"मुरादाबादी ने सोफे के हत्थे पर थाप लगाते हुए जरा जोर से कहा—तुम्हारी बात सौ फीसदी सही है। मेरे साथ कई बार ऐसा हुआ है कि किसी पत्रिका के लिए मेरी कहानी भी गयी और कृष्णकांत की कहानी भी गयी। मेरी कहानी बीस पड़ी, फिर भी सम्पादक ने छापी कृष्णकात की ही कहानी। इसे क्या कहा जाय? अब कृष्णकात मर गया, देखना किस तेजी से मेरी कहानियां छपती हैं।

"शैलेश्वर पान चबा रहा था। वह उठा। बाहर गया। पीक थूक कर भीतर आया। उसने प्रौढ़ व्यक्ति की तरह अपनी उंगलियों को जरा चमकाते हुए कहा—"कृष्णकात मे एक बहुत बडी बुराई थी।"

"कौन-सी?"—विद्रोही ने अपने होंठो के बीच से सिगार को हटाते हुए पूछा।

"कृष्णकात बड़ा ईर्ष्यालु आदमी था।"—शैलेश्वर ने बताया।

"यह बात तुम्हें कब मालूम हुई?"—डॉ॰ उदयप्रकाश ने अजीब अंदाज में यह सवाल पूछा।

"हुआ यह कि मेरा एक उपन्यास चिनगारी प्रकाशन, बनारस से छपा। आप लोगों को पता ही होगा कि इस प्रकाशन के मालिक उपन्यास-सम्राट् कुशवाहा कांत थे। उपन्यास की एक प्रति मैं कृष्णकात को देने गया। मेरा उपन्यास देखकर कृष्णकांत को खुश होना चाहिए था और मेरी प्रशंसा मे कुछ कहना चाहिए था। मगर उस आदमी ने बड़े अनमने ढंग से उलट-पुलट कर उपन्यास को देखा और कोने मे रख दिया। मैं [illegible] कर बड़ा परेशान हुआ। बड़े साहस के साथ मैंने पूछा—क्या आपको [illegible] उपन्यास का छपना कुछ अच्छा नहीं लगा?—कृष्णकांत ने [illegible] शैलेश्वर, बाजारू लेखक मत बनो।—मैं चुप हो गया। [illegible] जिगरी दोस्त से पूछा कि कृष्णकांत ने उस दिन वैसा उत्तर [illegible] था? उसके उस मित्र ने बताया कि कृष्णकांत तुम्हारी [illegible] है। तुम्हारे इस उपन्यास का प्रथम संस्करण [illegible]

प्रतियों का तो जरूर ही छपा होगा, लेकिन कृष्णकांत की कोई भी किताब एक हजार से ज्यादा कभी भी नहीं छप सकी।"—शैलेश्वर ने रहस्योद्घाटन किया।

इस पर डॉ० उदयप्रकाश ने शैलेश्वर की बात की पुष्टि करते हुए कहा—"हाँ, यह सच है कि कृष्णकांत के उपन्यासों की बहुत कम प्रतियां छपती हैं।"

शैलेश्वर ने बड़े गर्व के साथ अपना सीना फुलाते हुए घोषणा की—"बस, उसी दिन मैं समझ गया कि कृष्णकांत बड़ा जलनशील आदमी है और उसी दिन से मैंने उसके पास जाना भी बंद कर दिया। मैं तो उसके मरने पर भी नहीं गया।"

"अरे भाई, सीधी-सी बात है, जो जैसा बोयेगा, वह वैसा ही काटेगा। कृष्णकांत ने सबको अपना दुश्मन ही बना लिया था। इस शहर में कौन है ऐसा साहित्यकार जिससे उसकी कभी पटी हो? डॉ० सोमनाथ को वह देख नहीं सकता था। डॉ० उदयप्रकाश के नाम से उसे जूड़ी चढ़ने लगती थी। शैलेश्वर को वह अपना प्रतिद्वन्द्वी ही मानता था। विद्रोहीजी को वह तुक्कड़ कहता था। पतझड़ बनारसी तो उसकी नजर में चोर ही था।"—किशोर मुरादाबादी ने एक बुजुर्ग की तरह यह बात कही।

पतझड़ बनारसी ने तपाक् से कहा—"मौलिक लेखक तो बस कृष्णकांत था, बाकी तो हम सब लोग घसियारे हैं—घसियारे।"

इस बात पर सब लोग हँस पड़े।

सबकी हँसी के थम जाने पर डॉ० उदयप्रकाश ने एक दूसरा प्रसंग छेड़ दिया—"मैं तो साहित्य पढ़ता-पढ़ाता हूं। मैंने कृष्णकांत का पूरा साहित्य पढ़ा है। लेकिन, मेरी समझ में यह बात आज तक नहीं आ सकी कि उसने आखिर ऐसा क्या लिखा है, जो कुछ लोग उसे महान् साहित्यकार मानने लग गए हैं? डॉ० सोमनाथ ठीक ही कहते हैं कि कृष्णकांत यदि महान् साहित्यकार है, तो गुलशन नंदा को हिंदी का महानतम साहित्यकार मानना चाहिए।"

मुरादाबादी ने तत्काल कहा—"कृष्णकांत के बड़ा होने का राज मुझसे पूछिए। वह सरकारी पत्रिका 'नीति' का संपादक था। वह आदमी इस पत्रिका का लगभग तीस-बत्तीस वर्षों तक संपादक रहा। इतनी लंबी अवधि में उसने अपना एक बड़ा गुट तैयार कर लिया। वह यहां के लेखकों की रचनाएं कभी नहीं छापता था और बाहर के लेखकों की खूब छापता था। चूंकि नीति पारिश्रमिक देने वाला मासिक है फलतः इसमें हिंदी के अच्छे-से-अच्छे लेखकों ने लिखना शुरू कर दिया। इस तरह बाहर के

लेखकों के बीच कृष्णकांत लोकप्रिय होता चला गया। समझौता यही था कि मैं तुम्हें छापूंगा और तुम मेरी रचनाओं को छापो, छपवाओ और मुझ पर लेख, संस्मरण, इंटरव्यू आदि लिखवाओ और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपवाओ।"

"मुरादाबादी बिलकुल सही बोल रहा है।"—पतझड़ बनारसी ने अपने सिर के खड़े-खड़े बालों पर हाथ फेरते हुए जरा जोर से कहा।

"मैं तो यहां तक कहने के लिए तैयार हूं कि यदि मुझे 'नीति' के संपादन का भार केवल दो-तीन वर्षों के लिए भी दे दिया जाए, तो मैं दावे के साथ कहता हूं कि मुझे भी लोग हिंदी का महान कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार वगैरह-वगैरह सब कुछ मानने लग जाएंगे।"—मुरादाबादी फिर शुरू हो गया।

विद्रोहीजी बहुत देर से चुप सुन रहे थे। उन्होंने जरा धीरे से ही कहा—"बिलकुल ठीक, कुर्सी मिलने पर तो गधा भी सर्वज्ञ और सर्वोच्च हो जाता है।"

इस बात पर सबने मिलकर जोर का ठहाका मारा। क्यों तो मुरादाबादी को बात लग गयी? उसे ऐसा लगा कि विद्रोहीजी ने उसे ही गधा कहा है। फिर क्या था, वह एकाएक उबल पड़ा। उसने तेवर के साथ कहा—"विद्रोहीजी, मैं आपके सफेद बालों की इज्जत करता हूं। इसका मतलब यह नहीं होता कि आप मुझे गधा कह डालें?"

डॉ० उदयप्रकाश ने प्रसंग को एक कलात्मक मोड़ देकर फिजूल की बहस को वहीं समाप्त कर दिया। उसने कहा—"अरे भाई मुरादाबादी, गधा तुम्हें नहीं, कृष्णकांत को कहा गया है।"

इस पर सभी हंस पड़े।

कुछ देर के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। सभी चुप-चुप से बैठ गए।

शैलेश्वर ने चुप्पी को तोड़ा और कहा—"मुरादाबादी की बात से यह जाहिर हो गया कि कृष्णकांत कोई साहित्यकार नहीं, बल्कि एक महान् गुटबाज था। यदि वह गुटबाजी नहीं करता तो उसे इतना अधिक चर्चित होने का मौका कभी नहीं मिल पाता।"

"ऐसी-वैसी गुटबाजी! उसके गुट के लोग यहां से लेकर बनारस, इलाहाबाद, दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, आगरा वगैरह सभी जगहों में फैले हुए थे।"—पतझड़ बनारसी ने एक नया धमाका किया।

"थे? इसका क्या मतलब हुआ? अरे साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि वे अभी भी हैं।"—शैलेश्वर ने टोकते हुए कहा।

डॉ० उदयप्रकाश ने गंभीर मुद्रा अपनाते हुए अपना फैसला सुनाया—"ये ही कहना उचित होगा। अब कृष्णकांत नहीं है, अतः उसके गुट के होने की बात जचती नहीं।"

"अरे क्या धरा है डॉक्टर साहब, ये कहने में या है कहने में ? गुटबाजी में सब चलता है।"—पतझड बनारसी ने ठहाका लगाते हुए कहा।

"यह खूब रही !"—विद्रोहीजी का स्वर था।

शैलेश्वर 'नीति' का कोई पुराना अंक देख रहा था। उसे टेबुल पर रखते हुए उसने कहा—"चलो, अच्छा ही हुआ कि कृष्णकांत मर गया। उसके रहते हमारी प्रतिभा कभी भी चमक नहीं सकती थी। उसके मरने से अब हम लोगों को अनेक फायदे होंगे। मगर, हमें मिलकर एक कोशिश यह भी करनी चाहिए···"

"कैसी कोशिश ?"—मुरादाबादी ने अपनी आँखों को जरा गोल-गोल करते हुए पूछा।

"नीति का हिन्दी की पत्रिकाओं में बड़ा सम्मान है। हमें यह प्रयास करना चाहिए कि अब उसका संपादक कोई अपने ही गुट का आदमी बने।"—शैलेश्वर ने मंत्रणा दी।

"अगर हममें से ही कोई संपादक बन जाए तो मजा आ जाएगा।"—पतझड बनारसी ने उछलते हुए कहा।

"डॉक्टर साहब, क्या ऐसा नहीं हो सकता है ?"—विद्रोहीजी ने डॉ० उदयप्रकाश की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखते हुए पूछा।

"बिलकुल ऐसा ही हो सकता है। तरीका मैं बताता हूं।"—डॉ० उदयप्रकाश ने मसीहाई आवाज में सबकी ओर देखते हुए कहा।

"शुभ काम में फिर देर क्यों ? बताइए तरीका ?"—शैलेश्वर ने चहकते हुए पूछा।

डॉ० उदयप्रकाश अब गंभीर मुद्रा में आ गए। उन्होंने सोचने का उपक्रम करते हुए बताया—"ऐसा करें कि हम लोग मिलकर एक साहित्य परिषद् का गठन कर लें। इसका नाम क्या हो, इस पर बाद में सोच लिया जाएगा। इस संस्था का अध्यक्ष डॉ० सोमनाथ को बना दिया जाय। वह इसके लिए तैयार तो नहीं ही होंगे, पर उन्हें मनाना मेरा काम होगा।"

"ठीक, हम लोगों ने आपके कहे अनुसार साहित्य-परिषद् बना ली, अब आगे क्या करना है ?"—मुरादाबादी ने पूछा।

"डॉक्टर (सोमनाथ) साहब की शिक्षा मंत्री से खूब पटती है; क्योंकि वह उनका शिष्य रह चुका है। मैंने यह भी सुना है कि डॉक्टर साहब की कोई भी बात शिक्षा मंत्री नहीं उठाता। डॉक्टर साहब जो कहेंगे, उसे वह

मानेगा ही।"—डॉ० उदयप्रकाश ने रहस्योद्‌घाटन किया।

"बिलकुल ठीक।"—शैलेश्वर की आवाज थी।

"हम लोग साहित्य परिषद् की ओर से एक भव्य समारोह का आयोजन करेंगे, जिसमें शिक्षा मंत्री को बुलाया जाएगा। उस समारोह में हम लोग शिक्षा मंत्री के करीब आ सकेंगे। यदि जरूरी हुआ तो हम लोग उनकी पार्टी के चवनिया सदस्य भी बन जाएंगे। जब शिक्षा मंत्री से हम लोगों की जान-पहचान चल निकलेगी तब हम उनसे यह कहेंगे कि नीति का संपादक हम में से ही किसी को बनाया जाए।"—डॉ० उदयप्रकाश ने योजना पर प्रकाश डाला।

"वाह डॉक्टर साहब, क्या तरकीब सोची है आपने!"—शैलेश्वर ने दाद दी।

"अगर जरूरत पड़ी तो मैं डॉक्टर (सोमनाथ) साहब से भी शिक्षा मंत्री को कहलवा दूंगा।"—उत्साह के अतिरेक में डॉ० उदयप्रकाश ने यह बात भी कह दी।

"वाह! वाह! आज मैंने डॉक्टर साहब का लोहा मान लिया।"—पतझड़ ने झाड़ी दी।

यह सुनकर डॉ० उदयप्रकाश ने बड़े नाटकीय अंदाज में कहा—"मगर, एक बात है।"

"क्या?"—प्रायः प्रत्येक व्यक्ति ने एक साथ ही यह सवाल किया।

"डॉक्टर (सोमनाथ) साहब को मनाने के लिए यह जरूरी है कि जब हम लोग उनसे मिलें तो उनके सामने कृष्णकांत की खूब बुराइयां करें। मसलन हमें उनके सामने कहना चाहिए—कृष्णकांत ने इस शहर पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया था जिसे तोड़ना जरूरी है···कृष्णकांत के चलते ही अब तक इस शहर में कोई साहित्यिक संस्था नहीं बन सकी···वह तो आपका दुश्मन था, दुश्मन···आपके नाम से ही वह भड़क उठता था···चलो, अच्छा हुआ जो इस गंदगी को भगवान ने खुद उठा लिया···कहां डॉक्टर साहब और कहां कृष्णकांत···दोनों में तुलना ही नहीं हो सकती···मगर वह अपने को महान् लेखक समझता था···पर डॉक्टर साहब ने अकेले बराबर यही कहा कि कृष्णकांत लेखक है ही नहीं···इसी तरह की बातें हमें कहनी होंगी···"—डॉ० उदयप्रकाश ने भावी संवाद की रूपरेखा प्रस्तुत की।

योजना सुनकर शैलेश्वर मन-ही-मन बहुत खुश हो रहा था। उसने यह निष्कर्ष उसी समय निकाल लिया कि यदि शिक्षा मंत्री इस मंडली के किसी भी व्यक्ति को संपादक के पद पर देखना चाहेंगे, तो वह व्यक्ति

केवल शैलेश्वर ही होगा। यहां उपस्थित लोगों में वह एकमात्र हिंदी तथा संस्कृत का एम० ए० था। अब तक उसके तीन उपन्यास छप चुके थे। मुरादाबादी तो आई० ए० फेल था और उसने अपनी किताबें स्वयं छापी है, अतः शैलेश्वर की नजर में उसका कोई चास नहीं बनता था। बाकी लोग तो उसकी दृष्टि में अयोग्य थे ही। रही बात डॉ० उदयप्रकाश की। वह विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़कर क्यों आने लगे संपादकी करने के लिए? इतनी देर में उसने कल्पना में यह भी देख लिया कि नीति के नवीनतम अंक में उसका नाम संपादक के रूप में प्रकाशित हुआ है। उसकी प्रसन्नता लोगों से छिपी नहीं रह सकी, अतः विद्रोहीजी ने टोक दिया—"क्यों भइया शैलेश्वर, मन-ही-मन में दिल्ली के लड्डू फूट रहे हैं या बम्बई के?"

शैलेश्वर की चोरी पकड़ी गई थी। उसने थोड़ा चौंकते हुए एक बार चारों तरफ देखा फिर अपनी झेंप मिटाते हुए कहा—"जरा मैं सोच रहा था···"

"हां, हां, बोलो यारे, क्या सोच रहे थे?"—पतझड़ ने छेड़ा।

"सोच रहा था कि मन्त्रीजी के आगमन पर समारोह में क्या-क्या होगा?"—शैलेश्वर के मुख से अनायास ही निकल गया।

"वाह! बच्चा पैदा भी नहीं हुआ और ताऊजी झुनझुने की तलाश में मशगूल हो गये!"—मुरादाबादी ने व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट के साथ फुहार छोड़ी।

"कोई बात नहीं, अभी नहीं हुआ तो क्या हुआ? जब होगा तो अपना ही भतीजा कहलाएगा।"—बनारसी ने नहले पर दहला ठोक दिया।

कुछ देर तक लोग हंसते रहे।

"डॉक्टर साहब, एक बात शायद लोगों को पता नहीं होगी।"—यह बोलकर शैलेश्वर ने सबको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

"क्या?"—सबने पूछा।

"लोगों का यह भ्रम निराधार है कि कृष्णकांत इंदिरा-विरोधी था। सच्ची बात कुछ और है।"—शैलेश्वर ने रहस्य के ऊपर से हल्का-सा पर्दा हटाया।

"नहीं, नहीं, कृष्णकांत पूरी तरह इंदिरा-विरोधी थे। यदि ऐसी बात नहीं होती तो उनके मरने पर भी उनकी पेंशन का मामला अब तक अटका नहीं रहता।"—डॉ० उदयप्रकाश ने पहली बार मेरे लिए आदर सूचक शब्दों का प्रयोग किया।

"इसका मतलब यह है कि आप कुछ भी नहीं जानते।"—शैलेश्वर ने बड़े जोर से कहा।

"तो तुम्ही बता दो कि सच क्या है ?"—मुरादाबादी ने उकसाया।

"जनता पार्टी की हार के बाद जब इंदिरा गाधी यहा पहली बार आई थी प्रधान मंत्री के रूप मे, तो पता है कि उन्हें दिए गए मान-पत्र को लिखने वाला कौन था ?"—शैलेश्वर वजन के साथ बोल रहा था।

"कौन था ?"—डॉ० उदयप्रकाश ने पूछा।

"क्र···ष्ण···का·· त···समझ गए आप लोग ?"—शैलेश्वर ने दर्प के साथ घोषणा की।

"इसके बाद ये लोग कमरे से निकल कर बाहर जाने लग गए।"

"तो शैलेश्वर इतना घटिया आदमी है ! मैं तो उसके बारे कुछ और सोचता था।"

"कौन क्या है, यह जानना बहुत मुश्किल काम है, मनोहर"—एक उदास आवाज उभरी—"अगर किसी की असलियत जाननी हो तो तुम्हे पहले मेरी तरह मरना होगा और फिर तुम्हारी आत्मा को दर-दर की ठोकरें खानी होंगी, तब तुम्हे मालूम हो पाएगा कि यह दो टांगों वाला जानवर कितना घिनौना और भयकर है। आज यही तक। कल फिर बातें करूंगा।"

आठ

"मनोहर, तुमने सुना ही होगा कि इस शहर के कुछ लोग यहा एक भव्य स्मारक बनाने जा रहे हैं—मेरी स्मृति मे ?"

"जी हां, मैंने सुना है। यह भी पता चला है कि इसके लिए जो सचालन समिति बनी है, वह अपना काम बडे जोर-शोर से कर रही है। लाखो रुपये चदे से प्राप्त किये जा चुके हैं। स्मारक के लिए सरकार से एक बहुत बडा भूखण्ड शहर के बीच मिलने जा रहा है।"—मनोहर ने बताया।

"सचालन-समिति बहुत लगन से काम कर रही है, यही तो चिंता की बात है !"

"आपको तो खुश होना चाहिए कि इस नगर मे आपका एक भव्य स्मारक बनने जा रहा है।"—मनोहर ने अपनी राय प्रकट की।

"मनोहर, तुम्हारा ऐसा सोचना उचित ही है। मुझे जरूर खुश होना चाहिए था, लेकिन मैं जरा भी खुश नही हूं। इसका कारण यह है कि मैं संचालन-समिति के सभी सदस्यो को भली-भांति जानता हूं और यह भी

जानता हूं, मेरा स्मारक बनाने के पीछे इनकी वास्तविक नीयत क्या है।"

"क्या इनकी नीयत ठीक नहीं है?"—मनोहर ने सवाल किया।

"इनकी नीयत क्या है, उसे बताने के लिए मैं तुम्हें इन लोगों की एक गुप्त बैठक की जानकारी देना चाहूंगा।"

"ठीक है, मैं सुन रहा हूं। आप बोलिए। टेप रेकार्डर भी ठीक चल रहा है।"—अपने टेप रेकार्डर की ओर देखते हुए मनोहर ने कहा।

"तुमने मुरली मनोहर का नाम तो सुना ही होगा? यह नगर का एक चर्चित व्यक्ति है। यह आदमी हजार तरह के उल्टे-सीधे धंधे करता है। अब तक इसने लाखों रुपये पैदा किये हैं। बूढ़ा हो चला है, पर रुपये के लिए यह इस ढलती उम्र मे भी कुछ भी करने को तैयार रहता है। पता नहीं कैसे तो इस आदमी के दिमाग मे यह बात उगी कि कृष्णकांत के नाम पर कुछ किया जाय और कृष्णकांत के नाम का फायदा उठाया जाय। यहां मैं तुम्हें यह जरूर बता देना चाहता हूं कि यह आदमी मेरे मरने पर न तो मेरे घर गया था और न श्मशान ही। यह श्राद्ध मे भी नहीं आया था। एक दिन इसने अपने घर पर अपने जैसे पोच और घाघ व्यक्तियों को खाने और पीने पर बुलाया।"

"अच्छा!"—मनोहर ने विस्मय के साथ कहा।

"मुरली मनोहर की कोठी बहुत बड़ी है। कोठी में एक तहखाना भी है। इसी तहखाने में बैठक बुलायी गयी थी। इस बात का पूरा-पूरा ख्याल रखा गया कि इस बैठक की जानकारी नौकरों को भी नहीं हो। इस बैठक में जो व्यक्ति सम्मिलित हुए उनका परिचय जान लो।"

"जी। जान ही लेना चाहिए इनका परिचय।"

"टेबुल की दाहिनी तरफ मुरली मनोहर बैठा था। उसी की बगल मे बजरंग पोद्दार बैठा था। यह यहां का प्रसिद्ध व्यवसायी है। वनस्पति मे गाय की चर्बी मिलाने के आरोप में यह कई महीनों तक जेल मे भी रह चुका है। टेबुल की बायीं तरफ चार व्यक्ति बैठे हुए थे। एक की चर्चा मैं पहले ही कर चुका हूं। इसका नाम गोपाल एम० एल० ए० है। उसकी बगल में जो आदमी खद्दर का सूट पहन कर बैठा था, उसका नाम है—जयगोविन्द वर्मा। यह एक अवकाश प्राप्त आई० ए० एस० अधिकारी है। यह राज्य का मुख्य सचिव रह चुका है, फलत. सचिवालय तथा सरकारी महकमों मे अभी भी इसकी काफी धाक है।"

"हां, इन्हें मैं भी जानता हूं।"—मनोहर ने बताया।

"वर्मा की बगल में पैंट और शर्ट पहने एक आदमी बैठा था। लोग

उसे ज्ञानप्रकाश चोपड़ा के नाम से जानते हैं। दिखावे के लिए यह एक होटल चलाता है, पर वास्तव में इसका मुख्य धंधा है—तस्करी। चोपड़ा की बगल में इंग्लिश सूट पहनकर जो व्यक्ति बैठा था, उसका नाम है—डॉ० श्यामजी। इस डॉक्टर के बारे में यह कहा जाता है कि यह बेहद लालची और निर्दय है। इसकी यह आदत है कि यह रोगी को ऑपरेशन-थियेटर में ले जाता है और पेट चीरकर वह रोगी के संबंधियों से कहता है—रोगी को एक रोग और भी है। इसका भी ऑपरेशन जरूरी है, नहीं तो रोगी बच नहीं सकता। रुपये दीजिए तो ऑपरेशन में हाथ लगाऊं नहीं तो मैं रोगी के पेट की सिलाई कर दूंगा।"

"मैं डॉक्टर साहब को अच्छी तरह जानता हूं। इनके बारे शहर का हर आदमी यह जानता है कि यह डॉक्टर नहीं कसाई है।"—मनोहर ने बड़ी घृणा के साथ कहा।

"अब बैठक की कार्यवाही के बारे में सुनो—

—बैठक का प्रारम्भ करते हुए मुरली मनोहर ने बैठे-बैठे ही कहा–आप लोगों को पता ही है कि इस शहर में कृष्णकांत नाम के एक प्रसिद्ध लेखक थे। अब वह नहीं रहे। पिछले महीने उनका गंगा-लाभ हो गया है। उनकी ख्याति पूरे भारत में है। अपने प्रांत में तो उनके मुकाबले का आज भी कोई लेखक नहीं है। काफी सोच-विचार के बाद मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि हम लोगों को मिलकर इस शहर में उनके नाम पर एक स्मारक बनाना चाहिए।

यह सुनते ही ज्ञानप्रकाश चोपड़ा के बदन को आग लग गयी। उसने उबलते हुए कहा—क्या इसी गोरखधंधे के लिए आपने हम लोगों को यहां बुलाया है। हम ठहरे व्यवसायी, हमें लेखक और साहित्य से क्या लेना-देना है?

मुरली मनोहर ने हंसकर समझाते हुए कहा—चोपड़ा साहब, आप इसे गोरखधंधा न कहें। पहले आप मेरी पूरी योजना तो सुन लीजिए।

—कहिए—चोपड़ा अभी भी कुड़कुड़ा रहा था।

—कमल सिनेमा की बगल में लगभग दो एकड़ सरकारी जमीन अभी भी खाली पड़ी है। यह जमीन शहर के बीचोंबीच है। मैं चाहता हूं कि यह जमीन कोई दूसरा हड़प ले—उसके पहले ही हम लोग ही अपने कब्जे में ले लेने की कोशिश करें। सरकार यदि इस जमीन को बेचना चाहे तो पच्चीस लाख रुपए मैं अभी दे सकता हूं।—यह बोलकर मुरली एक बार सबको देख गया।

—जरा अपनी योजना भी बता ही डालिए :

अभी तक भी शांत नहीं हुआ था।

—साहित्य मे कृष्णकांत का बड़ा सम्मान है। संयोग से अपने मुख्य मंत्री और शिक्षा मंत्री दोनों ही बड़े साहित्य-प्रेमी हैं। हमें इसका फायदा उठाना चाहिए।—मुरली मनोहर बोला।

—मगर कैसे?—चोपड़ा अभी भी उबल ही रहा था।

—हम लोग मिलकर एक समिति बनाएँ और सरकार से अनुरोध करें कि यह समिति कृष्णकांतजी की स्मृति मे एक स्मारक बनाना चाहती है, अतः सरकार यह जमीन समिति को दान में दे दे। हम सरकार से यह भी कहें कि इस स्मारक में पुस्तकालय, एक आधुनिक नाट्यशाला, प्रेस, साहित्य संग्रहालय, अभिलेखागार तथा साहित्यकारों के लिए विश्रामागार की भी व्यवस्था होगी। स्मारक के चारों ओर की जमीन पर एक बाजार बनाया जायेगा। इससे प्राप्त आमदनी ही स्मारक के रख-रखाव पर खर्च की जायेगी।—मुरली मनोहर ने अपनी योजना प्रस्तुत की।

चोपड़ा अब ठंडा पड़ गया। उसने मुस्कराते हुए टिप्पणी की—योजना तो बड़ी लुभावनी है।

—पर, जमीन मिलेगी कैसे? सरकार कोई बेवकूफ तो है नहीं कि हमने जमीन की माग की और उसने जमीन दे दी?—डॉ० श्यामजी का प्रश्न था।

इस प्रश्न को सुनकर मुरली मनोहर ने जयगोविन्द वर्मा की ओर कनखी से देखा। वर्मा ने मुरली मनोहर का आशय समझ लिया। उसने बोलना शुरू कर दिया—जमीन तो मिल ही जायेगी। इस काम मे कोई परेशानी नहीं होगी। मैं मुख्य मंत्री तथा शिक्षा मंत्री को संभाल लूगा।

—इस पुनीत कार्य में मैं अपनी पूरी ताकत लगा दूगा।—गोपाल का आश्वासन था।

अब चोपड़ा ने श्यामजी की ओर देखा। डॉक्टर साहब ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा—कौड़ी तो बहुत दूर की है—इसमें कोई शक नहीं। इस काम को हाथ लगाया जा सकता है। मेरे जानते इस धंधे में घाटा होने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता।

—घाटा कैसे होगा? इसमें हमारा तो कुछ लगना नहीं।—बजरंग पोद्दार ने तपाक से कहा।

चोपड़ा ने एक बार एक-एक आदमी पर निगाह डाली। शायद वह लोगों को पढ़ने की कोशिश कर रहा था। उसने एक नया सवाल पूछा—काम कैसे शुरू होगा और लाभ का बटवारा हम लोगों के बीच किस प्रकार होगा—जरा इसका भी खुलासा कर ही दीजिए।

जयगोविन्द वर्मा ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—हम लोग अभी यहाँ छह आदमी हैं। एक स्मारक समिति हम लोग अभी गठित कर लें। इसमें हम सभी रहेंगे ही। सिर्फ इसमें एक महिला को शामिल कर लीजिए। मेरे ख्याल से स्मृति देवी को रखना ठीक रहेगा। बाद में हम लोग किसी सही मौके पर सरका देंगे उसे। समिति में सचिव बना दीजिए मुरली मनोहरजी को। अध्यक्ष बना दीजिए पोद्दारजी को। कोषाध्यक्ष बना दीजिए मुझे। दिखावे के लिए मुरली मनोहरजी, पोद्दारजी, चोपड़ा साहब और डॉक्टर साहब यह घोषित कर दें कि उन्होंने प्रस्तावित स्मारक के लिए पच्चीस-पच्चीस हजार रुपये का चंदा आज ही दे दिया है। समिति का निबंधन मैं एक सप्ताह में करवा लूंगा। निबंधन होते ही हम लोग चंदा उगाहने के काम में हाथ लगा देंगे।

—असली बात तो अभी भी रह गयी?—चोपड़ा ने छेड़ा।

—कौन-सी बात?—मुरली मनोहर ने चौंकते हुए पूछा।

—वही हिस्से की बात।—चोपड़ा ने बेशर्मी के साथ बताया।

मुरली मनोहर ने एक बार अपना माथा खुजलाया फिर कहा—देखिए चोपड़ा साहब, हिस्सा तो एक बटा छह सबको मिलना ही है। मगर, इसका भी पूरा ध्यान रखना होगा कि स्मारक भी बने और हमारा उद्देश्य भी पूरा हो। यदि हम लोगों ने कोई ऐसा काम किया जो संदेह पैदा करने वाला हो तो हम लोग कहीं के नहीं रह पायेंगे।

चोपड़ा ने डॉक्टर साहब की ओर देखते हुए पूछा—डॉक्टर साहब, आपकी क्या राय है?

—चलेगा।—श्यामजी ने केवल इतना ही कहा।

—चलेगा नहीं डॉक्टर साहब, सरपट दौड़ेगा।—पोद्दार ने उचकते हुए कहा।

पहली बार चोपड़ा ने बड़े विश्वास के साथ बोलना शुरू किया—इसके दफ्तर के लिए मैंने अपने होटल का एक कमरा दिया। आप लोग कल ही वहाँ एक साइन-बोरड टंगवा दें। मगर, इस समिति का नाम क्या होगा?

—कृष्णकांत स्मारक समिति।—जयगोविन्द वर्मा का उत्तर था।

—ठीक, कल बोरड टंगवा दीजिए।—चोपड़ा था।

—मैं प्रसाद बाबू वकील से समिति की नियमावली बनवा लेता हूं। यह जरूरी है। इसके बिना निबंधन नहीं हो पायेगा।—जयगोविन्द वर्मा ने कहा।

—काम शुरू करने पर आए दिन कुछ-न-कुछ खर्च होता

इस खर्च का बोझ किसी एक पर न पड़े तो अच्छा है।—मुरली मनोहर ने दबे-दबे स्वर में यह बात उछाल दी।

—मुरली मनोहरजी, आप भी कितनी घटिया बात बोल गये ? यह भी कोई बात हुई ? चलिए शुरू के सारे खर्च भी मैं ही दे दूंगा। कल मेरे होटल से दो हजार रुपये मगवा लीजिएगा।—चोपड़ा ने बड़े गर्व के साथ कहा।

—नही, नही, मेरा यह मतलब नही था।—मुरली मनोहर झेंपने लगा।

डॉक्टर श्यामजी ने कुर्सी से उठते हुए कहा—मुरलीजी, बड़ी भूख लगी है। जल्दी खाना खिलवाइए, नही तो आप लोगों को एक और समिति बनानी पड़ जायेगी—डॉ० श्यामजी स्मारक समिति।

डॉक्टर श्यामजी की पीठ पर धौल लगाते हुए चोपड़ा ने मस्ती में कहा—उस समिति में भी हम लोग ही रहेंगे।

सबने मिलकर जोर का ठहाका मारा।

"इसके बाद क्या हुआ ?"—मनोहर ने यह सवाल किया।

"इसके बाद लोग शराब पीते रहे और खाते रहे। खाते रहे और पीते रहे। लगभग एक घंटे तक खाने-पीने का यह दौर चला। दूसरे दिन दैनिक समाचार में एक खबर छपी—कृष्णकातजी की स्मृति में एक भव्य स्मारक बनाने के लिए समिति गठित।"—कृष्णकातजी की ध्वनि थी।

"वाह !"—मनोहर ने विस्मय के साथ कहा।

"मनोहर, मैं नही जानता था कि कुछ लोगों के लिए मेरा मरना इतना अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता है। जीते-जी तो मैं किसी को कोई लाभ नही पहुचा सका। चलो, मेरे मरने के बाद यदि कुछ लोगों का भला होने जा रहा है, तो होने दो उनका भी भला। मैंने सुना था कि कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो लाशों के कफन भी बेचकर खा जाते हैं, मगर वैसे लोगों से मिलने का मौका मुझे कभी नही मिला था। मरने के बाद ही मुझे ऐसे लोगों को जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जो कफन के सौदागरों से भी कहीं ज्यादा महान् और पूज्य हैं। कफन नहीं बेचते, ये लोग लाश भी नहीं बेचते बल्कि ये आदमी के नाम का सौदा करते हैं। वाह ! आदमी भी क्या चीज है ! शायद भगवान भी आदमी को अच्छी तरह नहीं जानते कि इस आदमी नाम के जीव के कैसे-कैसे पुर्जे हैं।"—कृष्णकातजी की आवाज बेहद भारी हो चली थी।

"आपको कैसा लगता है, क्या ये लोग आपका स्मारक बनायेंगे ?"—मनोहर ने प्रश्न किया।

"इन लोगों ने अपना जाल बिछाना तो शुरू कर ही दिया है। पर, ये क्या बनायेंगे मेरा स्मारक! हां, ये लोग जरूर बन जायेंगे।"

"हां, आपने बिलकुल ठीक कहा है।"—मनोहर समर्थन में बोल गया।

"स्मारक के नाम पर ये लोग मेरी एक छोटी-सी मूर्ति जरूर स्थापित कर देंगे, जिसकी शक्ल मुझसे नहीं, किसी और से मिलती होगी। उस मूर्ति पर रोज कौए बैठकर कांव-कांव करेंगे और हगेंगे। कितना अच्छा होगा वह दृश्य भी—हिन्दी के एक लेखक के माथे पर कौओं का नित्य हगना!"

"कृष्णकांतजी, कम-से-कम आप अपने बारे में ऐसी बात तो न कहें।"—मनोहर ने दुःखित होकर कहा।

"यही सच है मनोहर—यही सच है। अच्छा, आज इतना ही। शेष कल।"

नौ

"मनोहर, तुम्हें तो पता ही है कि सांवरिया ने सबके सामने अमर के हाथ में दस हजार रुपये की एक गड्डी थमायी थी। इन रुपयों के सहारे मेरा श्राद्ध-कार्य आदि सब कुछ बहुत मजे में सम्पन्न हो गया। अमर को विद्यासागर से जो दो हजार रुपये मिले थे, उसकी जानकारी उसने किसी को नहीं दी। उसने रुपये दबा दिये। बाद में जब बात खुली, उसने कह दिया—रुपये तो कई प्रकार के छोटे-मोटे खर्चों में निकल गये।"

"यह तो अमर ने अच्छा नहीं किया।"—मनोहर ने टिप्पणी की।

"यह उसकी बहुत पुरानी आदत है। उसकी इसी आदत के कारण मैं उसे युवराज कहा करता था।" इस बात पर मनोहर को हंसी आने लगी रही थी, पर उसने किसी प्रकार अपने को संयत कर लिया।

"मेरे निधन के पंद्रहवें दिन अरुण के साथ सांवरिया मेरे घर आया। उस दिन का वृत्तान्त सुनो—सांवरिया ने आज पहली बार कमला के चरणों का स्पर्श किया और कहा—प्रणाम, माताजी।

कमला ने आर्द्र होते हुए सांवरिया के माथे पर अपना हाथ रख दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा—युग-युग जीते रहो बेटे, पुण्य कमाओ। तुमने हम लोगों के ऊपर जो एहसान किए हैं, उन्हें कभी भूल नहीं पायेंगे।—कमला विह्वल-सी हो गयी थी।

—ऐसा मत कहिए, माताजी। अरुण और मुझमें क्या फर्क है? जैसे यह आपका बेटा है, उसी प्रकार मैं भी आपका बेटा हूं और एक बेटे को जो करना चाहिए मैंने वही किया। इसमें एहसान की क्या बात है? ऐसा कह-कर आप मुझे शर्मिंदा कर रही हैं।— सांवरिया एक सधे हुए अभिनेता के समान यह संवाद बोल गया।

"तुमने ठीक ही कहा कि इसमें एहसान की कोई बात नहीं है; क्योंकि तुम भी अरुण की तरह एक बेटे हो। पर, एक बेटा अरुण भी है। जरा इससे पूछो कि इसने अपने कर्तव्य को किस तरह निबाहा?— कमला ने अरुण की ओर कटाक्ष करते हुए कहा।

—माताजी, इसमें घबराने की कोई बात नहीं है। अरुण में अभी जिम्मेवारी की भावना नहीं आ सकी है। मैं इसे समझाने-बुझाने की कोशिश कर रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि यह जल्द ही रास्ते पर आ जायेगा और फिर आपको इससे कोई शिकायत नहीं रहेगी।—सांवरिया ने एक प्रौढ़ एवं अनुभवी व्यक्ति की तरह कमला को आश्वासन दिया।

—भगवान जानें, यह सुधरेगा या यों ही बर्बाद होगा।—कमला अत्यंत कातर स्वर में बोलकर आकाश की ओर देखने लगी।

—आप धीरज रखें, माताजी। सब कुछ ठीक हो जायेगा। एक बात और। अब आप भूल जायें कि आपके केवल दो बेटे हैं। अब आप तीन बेटों की माँ हैं। इस बेटे के रहते हुए आपको अब कभी भी कोई कष्ट नहीं हो सकता।—सांवरिया ने एक ऐसा पासा फेंका कि कमला की आँखों में आँसू छलक आये।

भावुकतावश कमला ने आगे बढ़कर सांवरिया को अपनी छाती से लगा लिया।

सांवरिया के सामने अब मेरी दोनों बेटियां संगीता और विनीता आने लगी थीं। दोनों ने इसे भैया कहना शुरू कर दिया था। पहले कमला दोनों को सांवरिया के सामने आने से रोकती थी। पर, अब मेरे मरने के बाद पुराने नियम शिथिल पड़ गये।

सांवरिया के हाथ में एक बड़ा-सा अलबम था। उसी की ओर देखते हुए संगीता ने पूछा—आपके हाथ में यह क्या है, भैया?

सांवरिया ने मुदित होते हुए उत्तर दिया—देखो, जिस काम के लिए मैं आया, वही भूल गया। यह अलबम है। इसमें बाबा की शव-यात्रा के चित्र हैं।

सांवरिया ने स्वयं अलबम खोलकर एक-एक चित्र दिखाना शुरू कर दिया। वह चित्र दिखाता जाता और अपनी ओर से टिप्पणी भी करता

जाता। वह इस प्रकार बोल रहा था मानो कोई उद्घोषक आकाशवाणी से लालकिले के मैदान में आयोजित पंद्रह अगस्त के समारोह का आखों देखा हाल सुना रहा हो।

तीन-चार चित्र देखने के बाद कमला के नेत्रों से आंसू झर-झर बहने लग गये। क्यो तो उसे यह सब देखना अच्छा नही लगा। वह सुबकती हुई आगन की ओर जाने लगी। संगीता ने बहुत कठिनाई से अपनी मां को रोका। कमला रुक गयी, पर उसकी आंखें बहती ही रही। संगीता और विनीता भी सुबक रही थी, पर उत्सुकता के साथ चित्र भी देखती जा रही थी।

अंतिम चित्र दिखाकर सांवरिया ने अलबम कमला की ओर बढ़ा दिया और कहा—माताजी, यह अलवम आप लोगों के लिए ही है। इसे रख लीजिए।

कमला समझ नही सकी कि वह क्या कहे और क्या करे। वह सांवरिया को देखती रह गयी। सांवरिया ने आगे बढ़कर कमला को अलबम थमा दिया। अब उसने संगीता की ओर देख कर कहा—संगीता, जरा एक गिलास पानी तो पिला दो।

यह सुनकर विनीता ने तपाक् से कहा—तुम यही रुको, दीदी। मैं पानी ले आती हू।

विनीता फुदकती हुई चली गयी और देखते-ही-देखते कांच के गिलास मे पानी लेकर हाजिर हो गयी।

पानी पीकर सावरिया ने लम्बी सांस खींची। वह बोला—बड़ी गर्मी है। आज एक मार्च है और अभी से ही गर्मी का यह हाल है तो पता नही आगे कैसी सड़ी गर्मी पड़ेगी?

—इस बार सर्दी जमकर पड़ी है, अत: सर्दी की ही तरह खूब गर्मी भी पड़ेगी।—अरुण ने पहली बार अपना मुंह खोला।

—हा, लगता तो कुछ ऐसा ही है।—सावरिया का कथन था। सांवरिया के पास एक थैला भी था, जिसे उसने अरुण की ओर सरका दिया और कहा—अरुण, जाओ किसी कमरे का इंतजाम करो। शव-यात्रा की फिल्म भी दिखा ही दूं।

थैले की ओर देखते हुए विनीता ने पूछा—इस थैले मे क्या है, भैया?

—विनीता, इसमे फिल्म दिखाने के लिए प्रोजेक्टर है।—सांवरिया का उत्तर था।

—वह तो बहुत बड़ा होता है?—संगीता ने टोका।

—हा, प्रोजेक्टर बड़ा भी होता है। यह सबसे छोटा प्रोजेक्टर है।

जापानी है।—बड़े गर्व के साथ सांवरिया ने बताया।

अरुण थैला उठाकर अपने कमरे की ओर चला गया। कोई आठ-दस मिनटों के बाद वह आया। उसने सबकी ओर देखते हुए कहा—आ जाओ, सब लोग मेरे ही कमरे में।

कमला नहीं जाना चाह रही थी। पर, सांवरिया ने उसे चलने के लिए बाध्य कर दिया।

अरुण के कमरे में सब लोग चले गये। अरुण की चौकी पर कमला, संगीता और विनीता बैठ गयीं। अरुण एक कोने में खड़ा हो गया। सांवरिया दीवार से सटकर खड़ा था। उसने अरुण से कहा—कमरे का दरवाजा और दोनों खिड़कियां बंद कर दो। अरुण ने वैसा ही किया।

कमरे में अंधेरा हो गया।

सांवरिया ने फिल्म दिखानी शुरू कर दी।

कमला पुनः रोने लग गयी।

पर्दे पर अब चिता की ऊपर उठती हुई लपटें दिखायी जा रही थीं। इस दृश्य को देखते ही कमला चौकी से लुढ़ककर जमीन पर आ गिरी।

संगीता ने झुककर मां को उठाना चाहा, पर कमला को अचेत देखकर वह चीख पड़ी—मां तो बेहोश हो गयी।

सांवरिया ने उसी दम कमरे की बत्ती जला दी। उसने प्रोजेक्टर को बंद कर दिया।

संगीता, विनीता और अरुण कमला को उठाकर आंगन में ले आए। विनीता मां के चेहरे पर पानी के छींटे मारने लगी। संगीता अखबार से जल्दी-जल्दी पंखा झलने लगी।

कुछ देर के बाद कमला ने धीरे-धीरे अपनी आंखों को खोलना शुरू कर दिया।

"मनोहर, अब मैं तुम्हें एक और घटना के बारे में बताने जा रहा हूं। [illegible] मैं तुम्हें पहले ही बता [illegible] इसका नतीजा यह [illegible]। उन्होंने आकाशवाणी के कार्यक्रम में भी भाग लेने से इंकार कर दिया। मगर, इन दिनों वह एक ऐसा काम कर रहे हैं, जिसने सबको चक्कर में डाल दिया है।"

"कौन-सा काम?"—मनोहर ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"डॉ० सोमनाथ इन दिनों एक स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित करने में लगे हुए हैं।"

"स्मृति-ग्रंथ का पूरा नाम क्या है?"—मनोहर ने पूछा।

"कृष्णकांत स्मृति-ग्रंथ।"—कृष्णकांतजी की आवाज में हास्य तथा व्यंग्य दोनों का पुट था।

"आश्चर्यजनक!"—मनोहर विस्मित होता हुआ बोला।

"मेरे मरने के बाद, अब मेरे सम्बन्ध में जो कुछ भी किया जा रहा है, वह वास्तव में आश्चर्यजनक है। डॉ० सोमनाथ के मन में कृष्णकांत स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित करने की बात कैसे पैदा हुई इसकी भी एक कहानी है। गर्मी की छुट्टियों में डॉ० सोमनाथ दिल्ली गये हुए थे। वह एक होटल में ठहरे हुए थे। रात के लगभग नौ बजे उनके पास एक टटका प्रकाशक आया। अब इन दोनों की बातचीत सुनो—

—नमस्कार, डॉक्टर साहब।—प्रकाशक ने अभिवादन किया।

—नमस्कार। क्षमा करेंगे, मैं आपको पहचान नहीं सका।—डॉ० सोमनाथ ने कहा।

—दरअसल मैं आपसे आज पहली ही बार मिल रहा हूं, फिर आप मुझे कैसे पहचानेंगे? मेरा नाम फतहचंद है। कुछ वर्षों से मैंने प्रकाशन का धंधा शुरू किया है। मैं तो आपसे मिलने के लिए आपकी युनिवर्सिटी में ही आनेवाला था। पर, संयोग कुछ ऐसा रहा कि मैं उधर नहीं जा सका।

—अच्छा, अच्छा।

—किसी से पता चला कि आप दिल्ली आए हुए हैं और इस होटल में ठहरे हुए हैं, अतः आपके दर्शनों के लिए दौड़ा-दौड़ा चला आया।—फतहचंद ने अतिशय नम्रता का प्रदर्शन करते हुए कहा।

—आपने कष्ट किया, इसके लिए मैं आपका आभारी हूं। कहिए, आपके लिए क्या मंगवाऊं—ठंडा या गर्म?

—इसके लिए धन्यवाद। दरअसल सूर्यास्त के बाद मैं कुछ भी नहीं लेता। इसके लिए मुझे क्षमा करें।

—लगता है—आप जैनी हैं?

—आपका अनुमान बिलकुल सही है।

—तब कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?—डॉ० सोमनाथ ने पूछा।

—डाक्टर साहब, मेरे मन में एक बिलकुल नयी योजना है।

—क्या?

—मैं प्रसिद्ध साहित्यकार कृष्णकांतजी की स्मृति में एक स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित करना चाहता हूं।

कृष्णकांत का नाम सुनते ही डॉ० सोमनाथ का पारा सातवें आसमान

पर चढ़ गया। वह गुस्से मे कुछ बोलने ही जा रहे थे कि फतहचंद बीच मे कूद पड़ा—कृष्णकातजी तो आपके ही शहर के थे न?

—हां।—डॉ० सोमनाथ का गुस्सा एकाएक नीचे उतर आया।

—डॉक्टर साहब, मेरा आपसे यह अनुरोध है कि इस ग्रंथ के सम्पादन का भार आप संभाल लें। आप जिस पद पर हैं, वहा बने रहने के कारण आप आसानी से चालीस-पचास लेख जुटा सकते है। चूंकि स्मृति-ग्रंथ की बात है, इसलिए कोई लेखक पारिश्रमिक की भी माग नही करेगा। सभी विश्वविद्यालयो मे आपके परिचित और मित्र हैं ही। आपके प्रभाव के कारण लोग इसमे बहुत चाव से लिखना चाहेंगे। मैं इस ग्रंथ को बहुत ही अच्छे ढंग से प्रकाशित करूँगा और आपको पंद्रह प्रतिशत रायल्टी दूगा। आप चाहें तो पाच हजार की पेशगी अभी ही आपकी नजर कर सकता हूं।—फतहचंद ने एक पके हुए व्यापारी की तरह जाल फेंका।

यह सुनते ही लगा कि डॉ० सोमनाथ एकाएक बदल गये और उनके भीतर मेरे लिए जो विरोध-भावना थी, वह काफूर हो गयी है। उन्होंने बड़े नम्र स्वर मे पूछा—ग्रंथ मे अनुमानतः कितने पृष्ठ होंगे?

—यही कोई ढाई-तीन सौ पृष्ठ।

—आकार?

—डिमाई।

—कितने का बजट है?

—यही कोई पैंतीस-चालीस हजार।

—कीमत क्या रखेंगे आप?

—कीमत का क्या है? जितनी अधिक कीमत रखी जाएगी, उतनी ही अधिक आपको रायल्टी मिलेगी।

—फिर भी?

—यही कोई दो सौ के आस-पास।

—कितनी प्रतिया छापेंगे?

—छापूगा ग्यारह सौ, पर हिसाब एक हजार पर होगा।

—यानें आप मुझे रायल्टी के रूप मे तीस हजार देंगे?

—जी डॉक्टर साहब, और पाच हजार की पेशगी इसी वक्त।

यह सुनकर थोड़ी देर डॉ० सोमनाथ ने कुछ सोचने का स्वाग किया। उन्होंने जेब से सिगरेटकेस निकाला। एक सिगरेट अपने होंठों में दबाकर दूसरी सिगरेट उन्होंने फतहचद की ओर बढ़ा दी।

फतहचद ने हाथ जोड़ते हुए कहा—धन्यवाद।

डॉ० सोमनाथ सिगरेट सुलगाकर कश-पर-कश खीचने लगे।

फतहचंद पलंग पर पड़े साप्ताहिक टाइम्स को उलटने-पुलटने लग गया।

डॉ० सोमनाथ ने कुछ देर के बाद अपना मौन भंग करते हुए कहा—फतहचंदजी, आपकी योजना तो मुझे अच्छी लग रही है। पर, प्रश्न यह है कि आप एक नये प्रकाशक हैं। इसलिए इस विषय पर भी मुझे सोचना है। कहीं ऐसा न हो कि आपको इस काम में घाटा उठाना पड़े; क्योंकि इस प्रकार का ग्रंथ पहले किसी प्रकाशक ने नहीं छापा है।

—डॉक्टर साहब, आपके आशीर्वाद से ऐसा कभी नहीं होगा। मैं हजार प्रतियां तो तीन-चार महीनों में ही खपा दूंगा। सिर्फ आपका आशीर्वाद होना चाहिए।

—पर मुझे यह भी देखना होगा कि इस ग्रंथ की रूपरेखा कैसी होगी? इस काम के लिए क्या मैं अपना समय निकाल पाऊँगा?—डॉ० सोमनाथ ने पैंतरेबाजी शुरू कर दी।

—यह तो मुझे पता है कि आपके पास वक्त की बड़ी कमी है। ऐसा कीजिए डॉ० साहब, इस काम में सहायता के लिए आप अपने किसी चेले को जोत दें। मैं उसे एक हजार अलग से दे दूंगा। आप केवल काम पर निगाह रखेंगे।

—फतहचंदजी, आजकल ऐसे चेले कहां मिलते हैं, जिन्हें कोई दायित्व-पूर्ण काम सौंपा जा सके?

—मेरा मतलब था आपका कोई ऐसा चेला जो आपके ही विभाग में काम करता हो।

—ऐसा चेला एक हजार में कैसे मिल पाएगा?

—खैर, आप जो कहेंगे, उसे मैं वही दे दूंगा।

—फतहचंदजी, मेरी एक खास आदत है कि मैं उसी काम को अपने हाथ में लेता हूं, जिसे मैं पूरी ईमानदारी के साथ पूरा कर सकूं। इसलिए मैं आपसे थोड़ा इस पर विचार करने के लिए समय चाहता हूं। मेरी मुश्किल यह है कि मैं कल सुबह ही विमान से जा रहा हूं। ऐसा करें, आप अपना पता मुझे दे दें, मैं आपको एक सप्ताह के भीतर ही अपना निर्णय बता दूंगा।

—ठीक है, डॉक्टर साहब। मैं इंतजार कर लूंगा। पेशगी दिए जा रहा [illegible]।—फतहचद ने एक लिफाफा डॉ० सोमनाथ की ओर बढ़ा दिया।

—नहीं, नहीं, अभी इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

—अच्छा, यह मेरा कार्ड है। इसे आप रख लें।—यह कहकर फतहचद ने लिफाफा अपनी जेब के हवाले कर दिया।

—मैं उत्तर देने में देर नहीं करूंगा।—डॉ० सोमनाथ ने आश्वासन देना चाहा।

—तब मैं चलूं ?—फतहचंद ने आज्ञा चाही।

—ठीक।

—नमस्ते।

—नमस्ते।—यह बोलकर डॉ० सोमनाथ ने तुरत दरवाजा बंद कर दिया मानो वह इस घड़ी की कब से प्रतीक्षा कर रहे थे।"

"इसके बाद क्या हुआ ?"—मनोहर ने इस संबंध में आगे जानने की इच्छा प्रकट की।

"मनोहर, फतहचंद के जाने के बाद डॉ० सोमनाथ ने अपने छोटे से कमरे में इस कोने से उस कोने और उस कोने से इस कोने के बीच बेचैनी से टहलना शुरू कर दिया। फिर वह स्वयं अपने आप से सवाल करने लगे और खुद जवाब भी देने लग गए। यह सवाल-जवाब बड़ा मनोरंजक है। लो, इसे तुम भी सुन लो—

प्रश्न—क्या फतहचंद बेवकूफ है, जो वह कृष्णकांत स्मृति-ग्रंथ पर पैंतीस-चालीस हजार रुपये लगाने का हौसला रखता है ?

उत्तर—नहीं, वह बेवकूफ नहीं है। वह पक्का व्यवसायी है।

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—वह लगभग चालीस हजार लगाकर दो लाख की वापसी की आशा करता है।

प्रश्न—दो लाख कैसे वापस आयेंगे ? चालीस हजार छपाई, कागज और जिल्द वगैरह पर लगेंगे। तीस हजार रायल्टी के हुए। लगभग चालीस हजार कमीशन में निकल जायेंगे। दस हजार का खर्च और जोड़ लो। कुल हुए एक लाख बीस हजार। इस तरह ज्यादा से ज्यादा फतहचंद अस्सी हजार कमा लेगा और क्या ?

उत्तर—मान लिया कि फतहचंद को अस्सी हजार का मुनाफा होता है। क्या अस्सी हजार रुपए कम होते हैं ? चालीस हजार लगाकर यदि अस्सी हजार की प्राप्ति होती है, तो कहना चाहिए कि दो सौ प्रतिशत का लाभ हुआ।

प्रश्न—तो क्या प्रकाशक इतनी अधिक कमाई करते हैं ?

उत्तर—यदि ऐसा नहीं होता तो हिंदी के प्रकाशक आज हवाई जहाज में नहीं घूमते।

प्रश्न—यदि यह काम इतना लाभकारी है तो क्या हर्ज है कि कृष्णकांत स्मृति-ग्रंथ का संपादन और प्रकाशन मैं ही करूं ?

उत्तर—यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम्हें कम-से-कम सवा लाख रुपये का लाभ हो सकता है।

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—अपने राज्य मे आठ विश्वविद्यालय हैं। प्रत्येक विश्वविद्यालय के अन्तर्गत पचास-पचास महाविद्यालय मान लिए जायें। इस प्रकार चार सौ महाविद्यालय हुए। यदि प्रत्येक महाविद्यालय में स्मृति-ग्रंथ की दो-दो प्रतियां भी खरीदी जाती है, तो आठ सौ प्रतिया देखते-ही-देखते बिक जायेंगी। यहां केवल दस प्रतिशत कमीशन ही देना होगा। इस प्रकार कमीशन की भी बचत हो जाएगी।

प्रश्न—लेकिन, ग्रंथ में प्रकाशक के रूप में तुम अपना नाम कैसे दे सकोगे ?

उत्तर—ठीक है, मैं अपना नाम नही दे सकता। मैं अपनी पत्नी का नाम तो दे ही सकता हूं।

प्रश्न—शेष प्रतियों को कैसे बेचोगे ?

उत्तर—दिल्ली के किसी प्रकाशक को वितरक बना दूंगा। वह पूरे देश तथा विदेश मे अपने प्रकाशनों के साथ स्मृति-ग्रंथ भी बेच लेगा।

प्रश्न—जब ऐसी बात है, तब स्मृति-ग्रंथ की बाईस सौ प्रतिया क्यों नही छापी जायें ?

उत्तर—बिलकुल ठीक। बाईस सौ प्रतिया छापने में ज्यादा लाभ है।

प्रश्न—प्रकाशन के लिए रुपये कहा से लाओगे ?

उत्तर—मैं अपनी भविष्य-निधि से रुपये निकालूंगा। बाकी रुपयों की व्यवस्था भी किसी-न-किसी प्रकार हो ही जाएगी।

प्रश्न—पर, जब लोग पूछेंगे कि आप तो कृष्णकांत के विरोधी थे, फिर आप क्यों उनके नाम पर स्मृति-ग्रंथ निकाल रहे हैं, तब क्या जवाब दोगे ?

उत्तर—कहूंगा—मैं कृष्णकातजी का विरोधी था, उनकी रचनाओं का नहीं। एक व्यक्ति के रूप में उनका मैं विरोध करता था, लेकिन साहित्यकार कृष्णकात के लिए मेरे हृदय मे अपार श्रद्धा है। इसका प्रमाण यह है कि मैं उनकी स्मृति में स्मृति-ग्रंथ प्रकाशित एवं संपादित करने जा रहा हूं। इस ग्रंथ में केवल भारत के ही नही बल्कि विदेशी विद्वानों की भी रचनाएं होंगी।

यह कहकर डॉ॰ सोमनाथ ने अपनी पीठ स्वयं ठोकी और वह प्रसन्नता से अपने कमरे मे उछलने लग गये। अब वह बुदबुदा रहे थे—कल की यात्रा स्थगित। अब कल वितरक तय करके ही दिल्ली से लौटूंगा। अगले साल तेरह फरवरी को अपने नगर मे कृष्णकातजी की इकसठवीं वर्षगांठ धूम-धाम से मनाऊंगा। उसी अवसर पर कृष्णकात स्मृति-ग्रंथ का विमोचन राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री से करवाऊंगा।

"मनोहर, मैंने पहली बार डॉ० सोमनाथ के मुँह से अपने लिए 'जी' का सम्बोधन सुना। इस प्रकार डॉ० सोमनाथ ने योजना बनायी और वह स्मृति-ग्रंथ की तैयारी में जुट गये। इसके आगे जो हुआ, उसके बारे में मैं फिर कभी बताऊंगा।"—कृष्णकांतजी की आवाज थी।

"आप जैसा उचित समझें।"—मनोहर था।

"मनोहर, सोचता हूं तो हंसी आती है कि मरने के बाद कृष्णकांत का नाम आज चेक क्यों बन गया है, जिसे हर आदमी भुना लेने के चक्कर में है। मैं नहीं जानता था कि मेरा मरना कुछ लोगों के लिए इतना लाभदायक सिद्ध होगा। अगर जानता होता तो मैं बहुत पहले ही मर जाने का कोई रास्ता जरूर ढूंढ निकालता।"

दस

"मनोहर, मेरी मृत्यु के लगभग पांच माह के बाद अपने जिले में एक नए उपायुक्त का आगमन हुआ। वह साहित्य-प्रेमी रहे हैं और मेरी रचनाओं को बड़े चाव से पढ़ते रहे हैं। यहां कार्य-भार ग्रहण करते ही उन्होंने नगर-पालिका के अध्यक्ष को फोन कर अपने पास बुलाया।"

"क्यों ?"—मनोहर ने पूछा।

"लो, दोनों की बातचीत सुन लो। इसी से तुम्हारे सामने सब कुछ स्पष्ट हो जायेगा—

उपायुक्त—साहूजी, क्या आप जानते हैं कि इस शहर में एक प्रसिद्ध लेखक रहा करते थे, जिनका नाम है—कृष्णकांतजी ? उनकी मृत्यु इसी वर्ष फरवरी महीने में हो गयी।

अध्यक्ष—जी सर, नाम तो सुना हुआ लगता है, मगर उनके बारे में मुझे कोई विशेष जानकारी नहीं है।

उपायुक्त—क्या उनके बारे में आप कुछ नहीं जानते ?

अध्यक्ष—उनके नाम के सिवाय मैं कुछ भी नहीं जानता।

उपायुक्त—ताज्जुब की बात है ! उनके मरने पर नगरपालिका की ओर से कुछ किया गया था या नहीं ?

अध्यक्ष—मैं नहीं समझ सका सर कि आप क्या पूछना चाह रहे हैं ?

उपायुक्त—क्या आपने अध्यक्ष होने के नाते कृष्णकांतजी के निधन पर नगरपालिका की ओर से कोई शोक-सभा की थी ?

अध्यक्ष—नहीं, सर।

उपायुक्त—क्या आपने या नगरपालिका के किसी अधिकारी ने कृष्णकांतजी के परिवार को कोई शोक-संदेश भेजा था ?

अध्यक्ष—मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं है, सर।

उपायुक्त—क्या आप स्वयं उनके घर दुःख प्रकट करने गये थे ?

अध्यक्ष—नहीं, सर।

उपायुक्त [झुंझलाकर] वह कहां रहते थे, आपको यह भी पता है या नहीं ?

अध्यक्ष [सिर झुकाकर]—नहीं सर। लेकिन, मेरा ड्राइवर पता लगा लेगा।

उपायुक्त—साहुजी, बहुत दुःख की बात है कि आपके नगर का एक ऐसा लेखक मर गया, जिसे पूरा देश जानता है, पर आप नहीं जानते ? लोग बाहर मे कृष्णकांतजी के लिए बहुत कुछ कर रहे हैं, पर आप यहां चुप बैठे हैं ? आपसे इतना भी नहीं हुआ कि आप अपने यहां एक शोक-सभा ही कर लेते और एक शोक-संदेश उनके घर भिजवा देते ?

अध्यक्ष—सर, नगरपालिका में लेखकों के मरने पर शोक-सभा करने की कोई परिपाटी नहीं है।

उपायुक्त—फिर किनके मरने पर आपके यहां शोक-सभा करने की परिपाटी है ?

नगरपालिका के अध्यक्ष ने चुप्पी साध ली।

उपायुक्त—चलिए, आप मेरे साथ अभी चलिए। मैं कृष्णकांतजी के परिवार से मिलना चाहता हूँ।

दोनों कमरे के बाहर आ गए। बाहर उपायुक्त की जीप तैयार खड़ी थी। दोनों जीप पर बैठ गए। उपायुक्त ने पूछा—नेपाली पोखरा कहां है, जानते हो ?

—जी।—ड्राइवर ने उत्तर दिया।

—वहीं चलना है।

जीप स्टार्ट हो गई। सात-आठ मिनटों तक जीप चलती रही। साहुजी उपायुक्त की बगल में सहमे-सहमे बैठे हुए थे। रास्ते में दोनों के बीच कोई बातचीत नहीं हुई।

नेपाली पोखरा के पास जीप आ गयी। ड्राइवर ने जीप रोकते हुए कहा—सर, यहीं है नेपाली पोखरा।

—जरा नीचे उतरकर किसी से पूछो तो लेखक कृष्णकांतजी कहां रहते थे ?—उपायुक्त ने अपने ड्राइवर को आदेश दिया।

जीप के रुकते ही नौ-दस वर्ष का एक नंग-धड़ंग लड़का जीप के पास आकर खड़ा हो गया। उसने उपायुक्त की ओर देखते हुए पूछा—किसका घर खोजते हैं, साहेब ?—यह कहकर उसने अपनी बहती हुई नाक को फटी कमीज की बांह से पोंछ दिया।

—कृष्णकांतजी का घर कौन-सा है ? क्या जानते हो ?—उपायुक्त ने स्वयं पूछा।

—कौन किसनकांतजी ? वही किसनकांतजी न जो कहानी बनाते थे ?—बच्चे ने पूछा।

—हां, हां, हमें उनके ही घर जाना है।—उपायुक्त ने मुदित होते हुए कहा।

यह सुनकर लड़के ने जरा मचलते हुए कहा—पहिले हमको आप अपनी गाड़ी पर बइठाइए तब हम आपको उनका घर पहुंचा देंगे।

लड़के की बातें सुनकर उपायुक्त को हंसी आ गई। उन्होंने अपनी सीट [illegible] री ही सीट पर बैठ जाओ।

[illegible] बैठना देखकर नगरपालिका के अध्यक्ष को उबकाई आने लगी। वह सरक कर ड्राइवर के और भी पास आ गए। सामने की सीट पर बैठते ही लड़के ने उछलते हुए आदेश दिया—सामने चलिए ड्लेवर साहेब।

उपायुक्त की ओर देखते हुए ड्राइवर ने कहा—साहब अभी नहीं बैठे हैं।

लड़के ने आदेशात्मक स्वर में उपायुक्त से कहा—जल्दी बइठ जाइए साहेब।

मुस्कराते हुए उपायुक्त पीछे आकर बैठ गए।

ड्राइवर ने धीरे-धीरे जीप चलानी शुरू कर दी।

उपायुक्त ने नगरपालिका के अध्यक्ष को छेड़ने की नीयत से कहा—देखा आपने साहुजी ? एक अपढ़ और साधारण लड़का भी यह जानता है कि कृष्णकांतजी एक लेखक थे और वह कहानियां लिखा करते थे।

साहु ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने केवल लड़के की तरफ हिकारत की एक नजर जरूर डाल दी।

एक कच्चे मकान के सामने पहुंचने पर लड़का जोर से चिल्ला पड़ा—बस हियें पर ड्लेवर साहेब। एहीवाला घर किसनकांतजी का है।

जीप पर उस लड़के को बैठा देख उसके अन्य साथी जीप के पीछे-पीछे भागे चले आ रहे थे। जब वह लड़का जीप से उतरा तो उसके साथियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया और वे उससे तरह-तरह के सवाल पूछने लग

गये। वह लड़का भी अपने जीपारोहण की कथा चटखारे ले-लेकर सुनाने लग गया।

देखते-ही-देखते मुहल्ले में यह बात फैल गई कि कृष्णकांतजी के घर डिप्टी कमिश्नर साहेब आए हैं। घर के सामने कुछ तमाशबीन भी जमा होने लग गए।

उपायुक्त महोदय ने कमला से भेंट की और समवेदना प्रकट की।

घर पर उस दिन मेरे दोनों ही बेटे मौजूद थे। संगीता और विनीता भी उपस्थित थीं। सबसे पहले उपायुक्त महोदय ने घूम-घूमकर पूरे घर का मुआयना किया। चेहरे पर उग आए भावों से लगा कि कच्चे मकान को देखकर उनके मन को ठेस लगी है। उन्होंने सबसे पहले अमर से सवाल किया—आप कुछ करते हैं, क्या?

—नहीं, मेरी रुचि नाटक में है। मैं नाटकों में अभिनय करता हूं।

—शौकिया या पेशे के रूप में?—उपायुक्त ने पूछा।

—शौकिया।—अमर का उत्तर था।

—और आप? —अरुण की ओर देखते हुए यह सवाल पूछा गया।

—जी, मैं कुछ नहीं करता।—अरुण ने बहुत धीमी आवाज में उत्तर दिया।

—माजी, फिर इस घर का खर्च कैसे पूरा पड़ता है?—उपायुक्त का प्रश्न था।

—क्या बताऊं?—कमला ने कातर होते हुए कहा।

"क्या बताऊं?" इस छोटे-से वाक्य में जो वेदना थी, वह उपायुक्त की समझदारी से छिपी नहीं रह सकी। उन्होंने पलक झपकते ही सब कुछ ताड़ लिया। उन्होंने साहुजी की ओर देखते हुए पूछा—साहुजी, क्या आप इस परिवार के लिए कुछ कर सकते हैं?

साहुजी तो पहले से ही आतंकित थे। उन्होंने हड़बड़ी में कह दिया—आप जो आदेश दें, सर।

—सबसे पहला काम आप यह कीजिए कि इस मकान का जितना भी टैक्स बकाया हो, उसे आप शीघ्र माफ कर दें।

—जी।—नगरपालिका अध्यक्ष ने कहा।

—यदि नगरपालिका में कोई उपयुक्त जगह खाली हो तो फिलहाल दोनों भाइयों में से किसी एक को आप कोई नौकरी दे दें।—उपायुक्त ने आदेशात्मक रुख अपनाते हुए कहा।

—जी सर।—साहु की आवाज कांप रही थी।

—इस गली का क्या नाम है, साहूजी ?—उपायुक्त ने साहूजी की तरफ देखकर पूछा।

नगरपालिका के अध्यक्ष ने बड़ी लाचारी के साथ अमर की ओर देखा।

अमर के बोलने के पहले ही अरुण बोल पड़ा—इस गली का नाम भैंसा टोली है।

यह सुनकर उपायुक्त को कुछ बुरा लगा। उन्होंने कहा—यह भी कोई नाम है—भैंसा टोली ! साहूजी, इस गली का फिर से नामकरण होना चाहिए। इसका नया नाम होना चाहिए—कृष्णकांत सरणी। इसके लिए आप शीघ्र कारंवाई कीजिए। गली के नुक्कड़ पर सीमेंट का ही एक बोर्ड बनवाकर उस पर लिखवाना ठीक होगा—कृष्णकांत सरणी। मैं चाहता हूं कि पंद्रह अगस्त को जब मुख्य मंत्रीजी यहां आएं तो उनके ही हाथों से इस गली का उद्घाटन करवा दूं।

—अच्छा रहेगा, सर।—साहू ने हां-में-हां मिला दी।

[illegible]

आप मुझे रात के बारह बजे भी बुला सकती हैं। मैं जरूर आऊंगा। कृष्णकांतजी के लिए मेरे मन में कितनी श्रद्धा है, उसे मैं व्यक्त नहीं कर सकता। अच्छा, अब चलता हूं।

उपायुक्त जीप पर आकर बैठ गए। बगल की सीट पर साहूजी भी धीरे से आकर जम गए।

जीप चल पड़ी।

नुक्कड़ पर आकर उपायुक्त ने जीप अचानक रुकवा दी। वह जीप से नीचे आ गए। साहूजी भी नीचे आ गए। दोनों जीप की दाहिनी ओर खड़े हो गए।

[illegible]

उपायुक्त ने तालाब को बड़े ध्यान से देखने के बाद कहा—साहूजी, देखिए, तालाब के किनारे-किनारे अभी कितनी गंदगी फैली हुई है, आप इस

गदगी को हटवा दें और चारों ओर तार से घेरावदी करवा दें। यहा एक छोटा-सा उद्यान बन सकता है। उद्यान के बीच मे आप एक मूर्ति भी लगवा सकते हैं।

—किसकी मूर्ति सर ?—अध्यक्ष ने पूछा।

—कृष्णकांतजी की और किसकी ?—उपायुक्त ने जरा रुखे स्वर में उत्तर दिया।

—जी सर।—नगरपालिका के अध्यक्ष ने बडे ठडेपन के साथ कहा।

—साहुजी, केवल सर-सर मत कीजिए। मैं गंभीरता से बोल रहा हूं। आप इन कामो को जल्द-से-जल्द पूरा करवाने की कोशिश करेंगे। कृष्णकातजी जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकार के सम्मान में आपकी नगरपालिका को कम-से-कम इतना तो जरूर ही करना चाहिए।

—जी सर।—साहुजी ने भरे हुए स्वर में जान डालने की कोशिश की।

उस दिन उपायुक्त और नगरपालिका के अध्यक्ष भैसा टोली से लौट गए।"

"नगरपालिका के अध्यक्ष ने फिर क्या किया ?"—मनोहर ने अधीर होते हुए पूछा।

"उपायुक्त ने बड़ी तेजी से शहर मे फैले हुए अतिक्रमण को हटवाना प्रारभ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि शहर के वैसे तत्त्व सक्रिय हो गए, जिन्होंने सरकारी जमीनों को अवैध रूप से हड़पकर उन पर अपने-अपने आलीशान भवन बनवा लिए थे। उपायुक्त के विरुद्ध ये लोग खडे हो गए। इन लोगो ने मिलकर विधायकों, सासदों तथा मंत्रियो को उपायुक्त के खिलाफ भडकाया।"—कृष्णकातजी की ध्वनि थी।

"फिर क्या हुआ ?"—अगला सवाल किया मनोहर ने।

"राजधानी से आदेश आ गया कि उपायुक्त अतिक्रमण हटाने का कार्य-क्रम तुरत रोक दें। लोगो को इससे भी तसल्ली नही मिली। मुख्य मत्री के कान इतने भरे गए कि उन्होंने उपायुक्त का इस नगर से तबादला भी कर दिया।"

"यह तो बहुत बुरा हुआ।"—मनोहर था।

"उपायुक्त के जाने के बाद नगरपालिका के अध्यक्ष ने अपने बढे हुए हाथ पीछे खींच लिए। इसका परिणाम यह है कि नेपाली पोखरा आज भी पहले ही की तरह गंदगी से घिरा हुआ है। मेरी गली आज भी भैसा टोली के नाम से ही जानी जाती है। आज भी गली के नुक्कड़ पर रुककर बाहर से आनेवाले साहित्य-प्रेमी पूछते हैं—कृष्णकांतजी का घर कहां है ? ऐसा

इसलिए होता है; क्योंकि उस गली के नुक्कड़ पर अब तक कृष्णकांत सरणी नहीं लिखी जा सकी है और अब कभी लिखी भी नहीं जाएगी।"

ग्यारह

"मनोहर, राजधानी से एक मासिक पत्रिका प्रकाशित होती है—स्वर। पत्रिका साधारण ही है। मगर, इसके सम्पादक एवं प्रकाशक राघव त्रिवेदी अत्यंत होशियार व्यक्ति हैं। चूंकि इनकी पत्रिका पिछले तीस वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही है, फलतः इन्हें पर्याप्त विज्ञापन भी प्राप्त हो जाते हैं। इस पत्रिका के बारे में कहा जाता है कि प्रत्येक माह इसकी दस हजार प्रतियां छापी जाती हैं। पर, सच्ची बात यह है कि इसकी मुश्किल से पांच सौ प्रतियां छापी जाती हैं। ये प्रतियां लेखकों, कुछ वार्षिक ग्राहकों तथा विज्ञापनदाताओं के बीच बंट जाती हैं।"

"ऐसा करने से त्रिवेदीजी को क्या लाभ मिलता है?"—मनोहर ने प्रश्न किया।

"मनोहर, ऐसा करने से त्रिवेदी को अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। पहला लाभ तो यह है कि त्रिवेदी को प्रत्येक माह दस हजार प्रतियों के लिए न्यूज-प्रिंट का कोटा सरकार से प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह आदमी हर महीने साढ़े नौ हजार प्रतियों का न्यूज-प्रिंट बचा लेता है। बचा हुआ यह न्यूज-प्रिंट राजधानी के प्रेसवाले काले बाजार में खरीद लेते हैं। इस प्रकार त्रिवेदी को केवल कागज की बिक्री से ही हजारों का लाभ हो जाता है। यदि त्रिवेदी अपनी पत्रिका वास्तव में दस हजार छापना शुरू कर दे तो उसे लाभ के बदले नुकसान होना शुरू हो जाएगा।"

"वह कैसे?"—मनोहर पूछ बैठा।

"पत्रिका की एक प्रति की लागत अभी तीन रुपए पड़ेगी जबकि पत्रिका की कीमत केवल दो रुपए है। ऐसी स्थिति में ज्यादा पत्रिका छापने का अर्थ है ज्यादा हानि उठाना। समझ गए, मनोहर?"

"जी।"

"त्रिवेदी विज्ञापनदाताओं को बताता है कि उसकी पत्रिका की दस हजार प्रतियां हर महीने प्रकाशित होती हैं। परिणाम यह है कि उसे बड़ी-बड़ी कंपनियों से विज्ञापन आसानी से मिल जाते हैं। विज्ञापन से भी त्रिवेदी को बहुत अच्छी आय हो जाती है। तुम्हें तो यह पता ही होगा कि यह

पत्रिका स्टॉलों मे कभी भी दिखाई नही पड़ती। जिस पत्रिका की दस हजार प्रतियां छपती हों, उसकी एक प्रति भी बाजार मे देखने को न मिले, यह आश्चर्यजनक है।"

"हां, यह आपने ठीक ही कहा कि 'स्वर' की प्रतियां दूकानो मे कभी भी नजर नही आतीं।"

"त्रिवेदी अपने लेखको को पैसे नही देता। यही कारण है कि उस पत्रिका मे केवल नए लेखक ही लिखते हैं। जिस लेखक की रचना कही नही छपे, वह अपनी रचना 'स्वर' मे भेज दे, वह निश्चित रूप से छप जाएगी।"

"जी, यह बात मैंने कई लोगों के मुंह से सुनी है। मगर, आप त्रिवेदीजी के बारे में कहना क्या चाह रहे है?"—मनोहर ने अधीरता के साथ पूछा।

"मनोहर, अब मैं उसी बिंदु पर आ रहा हूं। मेरी मृत्यु फरवरी में हुई और राघव त्रिवेदी ने अपनी पत्रिका के मार्च अंक में ही यह घोषणा कर दी कि जून मे वह कृष्णकांत विशेषांक निकालने जा रहा है, जो मई तथा जून का संयुक्तांक होगा।"

"यह तो त्रिवेदीजी ने एक अच्छा काम किया?"—मनोहर ने प्रश्न पूछने के लहजे में कहा।

गहरी सांस लेने जैसी एक आवाज सुनाई पड़ी। इसके बाद कृष्णकांतजी का स्वर उभरा—"हां, तुमने ठीक ही कहा मनोहर, कि विशेषांक की घोषणा कर त्रिवेदी ने एक अच्छा काम किया। इस पर मुझे खुश भी होना चाहिए, क्योंकि मुझ पर विशेषांक निकालने के लिए उन पत्रिकाओं ने भी कोई पहल नही की, जिनके लिए मैं अनवरत लिखता रह गया। पर, प्रश्न यह है कि त्रिवेदी ने मुझ पर विशेषांक निकालने की जो घोषणा की, उसके पीछे उसकी नीयत क्या थी? मुझे स्पष्ट करना चाहिए कि विशेषांक निकालने के पीछे त्रिवेदी का मकसद बड़ा घिनौना था। महात्मा गांधी कहा करते थे कि साध्य एवं साधन दोनों को पवित्र होना चाहिए। साध्य यदि पवित्र है और उस साध्य को प्राप्त करने के लिए यदि कोई अपवित्र साधन का उपयोग करता है, तो पवित्र साध्य भी अपवित्र हो जाता है।"

"जी, यह तो सही बात है।"

"बस, इसी कारण मेरी आत्मा त्रिवेदी से दुःखी है।"

"क्या विशेषांक प्रकाशित करने के पीछे त्रिवेदी का कोई कुत्सित उद्देश्य था?"—मनोहर ने आश्चर्यमिश्रित स्वर मे पूछा।

"हां।"

"क्या आप इस पर कुछ प्रकाश डालना चाहेंगे?"

"अवश्य । त्रिवेदी का एक मित्र है—शिवशंकर । उसने एक दिन त्रिवेदी से भेंट की । लो, सुनो दोनों की बातचीत—

शिवशंकर —क्यों भाई त्रिवेदी, क्या समाचार हैं ?

त्रिवेदी—बस, चल रहा है ।

शिवशंकर [कटाक्ष करते हुए]—स्वर की ग्राहक-संख्या कुछ बढ़ी कि नहीं ?

त्रिवेदी—क्या यार, तुम भी बार-बार मुझसे यही मजाक क्यों करते हो ?

शिवशंकर—अगर तुम्हें यह सवाल बुरा लगता है तो छोड़ो इसे । आज मैं तुम्हारे लिए एक आइडिया लेकर आया हूं । अब तुम खुश हो जाओ । मगर, शर्त्त यह है कि इसके लिए मैं अपनी पूरी फीस लूंगा ।

"मनोहर, क्या तुम शिवशंकर की फीस जानते हो ?" बातचीत रोककर कृष्णकांतजी ने पूछा ।

"जी नहीं ।"—मनोहर ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की ।

"शिवशंकर की फीस का अर्थ होता है—ढाई सौ रुपए नकद या किसी अच्छे होटल में छोकरी और दो बोतल ह्विस्की ।"

"छिः छिः ।"—मनोहर ने घृणा प्रकट की ।

"लो, अब आगे का हाल सुनो—

त्रिवेदी यह सुनकर कुछ सोचने लगा । उसने कुछ देर के बाद कहा—यदि मेरे लाभ की बात होगी तो मुझे तुम्हारी शर्त्त मंजूर है ।

शिवशंकर—वादा ?

त्रिवेदी—वादा ।

शिवशंकर—यदि तुमने धोखा देने की कोशिश की तो तुम जानते हो कि मैं कितना बुरा आदमी हूं ।

त्रिवेदी—जानता हूं, बहुत अच्छी तरह जानता हूं ।

शिवशंकर—तो सुनो । कृष्णकांतजी मर गए । तुम्हें तो पता ही होगा ?

त्रिवेदी—पता है ।

शिवशंकर—तुम एक काम करो ।

त्रिवेदी—क्या ?

शिवशंकर—अपनी पत्रिका के मार्च अंक में घोषित कर दो कि 'स्वर' का मई-जून अंक कृष्णकांत विशेषांक होगा ।

यह सुनते ही त्रिवेदी को गुस्सा आ गया । उसने दांत पीसते हुए कहा—क्यों निकालूं मैं कृष्णकांत विशेषांक ? वह मेरे कौन लगते थे ? मैं ऐसा

गधा नही कि तुम्हारे बहकावे मे आ जाऊं।

शिवशंकर ने बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा—तुम गधे हो, यह एक सच्चाई है। यदि तुम गधे नही होते तो पहले मेरी बात पूरी तरह सुनने की कोशिश करते और फिर अपना थोबडा बजाते।

त्रिवेदी—अच्छा बोलो, क्या कहना चाहते हो?

शिवशंकर—अभी तुम्हारी पत्रिका में चौसठ पृष्ठ रहते हैं न? बोलो—हां।

त्रिवेदी—हां।

शिवशंकर—यदि यही सामग्री डबल क्राउन सोलहपेजी मे छापी जाए तो एक सौ अट्ठाईस पृष्ठ होंगे कि नही? बोलो—हां।

त्रिवेदी—हां।

शिवशंकर—तुम यदि मई और जून दोनों अंको को मिलाकर संयुक्तांक बना दो तो कुल दो सौ छप्पन पृष्ठ होंगे कि नही? बोलो—हां।

त्रिवेदी—हां।

शिवशंकर—इन दो सौ छप्पन पृष्ठों में से तुम बत्तीस पृष्ठ विज्ञापन के लिए अलग कर दो। बोलो—कर दिया।

त्रिवेदी—हां, कर दिया।

शिवशंकर—शेष पृष्ठों मे कृष्णकांतजी से संबंधित सामग्री छापो। उनके नाम पर तुम्हें ढेर सारी रचनाएं मिल जाएंगी। मिलेंगी न? बोलो—हां।

त्रिवेदी—हां।

शिवशंकर—यह विशेषांक ढाई हजार छपवाओ। बोलो—हां।

त्रिवेदी—क्यो ढाई हजार छपवाऊं?

शिवशंकर—अभी कोई सवाल नही। तुम सिर्फ हां बोलते चलो। बोलो—हां।

त्रिवेदी—लो बाबा—हां।

शिवशंकर—पांच सौ प्रतियां तुम जिस प्रकार खपाते हो—खपा दो। बोलो—हां।

त्रिवेदी—हां, मगर दो हजार प्रतियां मैं चाटूंगा क्या?

शिवशंकर—यही है पहचान गधे की। जब गधा रेंकना बंद कर देता है, तब वह दुलत्ती मारना शुरू कर देता है। कर देता है कि नही? बोलो—हां।

त्रिवेदी—हां।—वह झोंक मे बोल गया।

शिवशंकर—साले गधे, इन दो हजार प्रतियों को तू बढ़िया वाइट-

प्रिंट कागज पर छपवायेगा। इन पर पक्की जिल्द चढवायेगा। ऊपर एक बढिया आवरण होगा, जिस पर सुंदर अक्षरों में लिखा होगा—"कृष्णकांत की स्मृति में"। नीचे कोने में छपा होगा—राघव त्रिवेदी। इस सजिल्द किताब का मूल्य होगा—तीस रुपए। दो हजार को तीस से गुणा करके देख। कितना हुआ? तू क्या बताएगा? तेरे खानदान में किसी को जोड़ घटाव आता भी है? कुल साठ हजार रुपए हुए। मान लो कि तीस हजार कमीशन और रिश्वत वगैरह में खर्च हो गए तो कितने बचे? पूरे तीस हजार बचेंगे। बोल बचेंगे कि नहीं?

त्रिवेदी—हां, बचेंगे।

शिवशंकर—ये किताबें देखते-ही-देखते बिक जाएंगी।

त्रिवेदी—लेकिन आवरण पर सिर्फ मेरा नाम नहीं होना चाहिए।

शिवशंकर—तो क्या होना चाहिए आपका याने गधे का चित्र?

त्रिवेदी—वहां होना चाहिए—सम्पादक—राघव त्रिवेदी।

शिवशंकर—साले गधे! तू कभी भी सुधर नहीं सकता। यदि तू ऊपर अपने नाम के आगे सम्पादक नहीं लिखेगा तो लोग यह सोचेंगे कि यह एक स्वतंत्र किताब है, जिसके लेखक हैं महापंडित राघव त्रिवेदी। आयी बात समझ में?

त्रिवेदी—हां।

शिवशंकर—रात हो चली है। बोल मेरी फीस तू कैसे चुकाएगा—कैश में या काइंड में?

त्रिवेदी—मैं रवीन्द्र लॉज में फोन कर देता हूं। तुम्हारी फीस वहां काइंड में मिल जाएगी।

शिवशंकर—देख, तू है मक्खीचूस, अगर वहां दोनों चीजें टॉप की नहीं मिली, तो मैं तुम्हारे विशेषांक के खिलाफ खुद लिखूंगा और सबके सामने तुझे और तेरे स्वर को नंगा करके रख दूंगा।

त्रिवेदी—अब जा मेरे बाप, जा। तेरे साथ मैं कोई धोखा नहीं कर सकता। तुझसे बचकर आखिर मैं जाऊंगा कहां?

शिवशंकर—अरे तू और कहां जाएगा? तू तो सीधे नरक में जाएगा। पर यह याद रख वहां मैं पहले से ही तेरी गर्दन दबोचने के लिए हाजिर रहूंगा।

त्रिवेदी—अच्छा, अब जा। मैं अभी फोन कर देता हूं।

शिवशंकर चला गया। त्रिवेदी बहुत खुश था। उसने खुशी-खुशी रवीन्द्र लॉज में फोन कर दिया।

"इसके बाद क्या हुआ?"—मनोहर अधीर हो रहा था।

"मनोहर, त्रिवेदी ने वही किया जैसा कि शिवशंकर ने बताया था। त्रिवेदी ने 'स्वर' का विशेषांक निकाला। उसे लोगों ने देखा भी नहीं। मगर "कृष्णकांत की स्मृति में" नामक जो किताब छपी, देखते-ही-देखते उसका पहला संस्करण समाप्त हो गया। इस पुस्तक के प्रकाशन से त्रिवेदी को लगभग पैंतीस हजार रुपए का शुद्ध लाभ हुआ।"

"अच्छा!"—मनोहर ताज्जुब में पड़ गया।

"इस पुस्तक की साहित्य-जगत् में अच्छी चर्चा हुई। इसके संबंध में दिल्ली के एक प्रसिद्ध दैनिक ने इस प्रकार टिप्पणी की—कृष्णकांतजी का निधन फरवरी में हुआ और जून में "कृष्णकांत की स्मृति में" प्रकाशित कर राघव त्रिवेदी ने एक प्रशंसनीय कार्य किया है। उन्होंने हिन्दी-संसार को इस पुस्तक के माध्यम से एक नई दिशा प्रदान की है और स्वयं आगे चलकर यह बता दिया है कि हमें अपने साहित्यकारों का किस प्रकार सम्मान करना चाहिए। अल्पावधि में इतनी स्तरीय पुस्तक सम्पादित तथा प्रकाशित करने के लिए राघव त्रिवेदी साधुवाद के पात्र हैं। पुस्तक का आवरण, मुद्रण तथा जिल्द अत्यन्त नयनाभिराम हैं। आशा है, हिन्दी-साहित्य-संसार इस ऐतिहासिक दस्तावेज का समुचित सम्मान करेगा।"

"वाह! टिप्पणी तो अत्यन्त उत्साहवर्द्धक है!"—मनोहर बोल गया।

"देखा मनोहर, जब मैं जीवित था तो मेरा कोई मोल नहीं था। मरते ही मैं अनमोल हो गया। त्रिवेदी जैसे घाघ ने बैठे-बैठे मेरे नाम के सहारे लगभग पैंतीस हजार रुपए बना लिए। शायद इसीलिए एक कहावत कही जाती है कि ऊपरवाला बेवकूफ को इतना देता है कि चालाक बेवकूफ को देखकर दंग रह जाता है। त्रिवेदी की यह हरकत देखकर मेरी आत्मा भी दंग रह गई।"

मनोहर सुनता चल रहा था।

"मनोहर, मजे की एक बात बताऊं?"

"क्या?"

"राघव त्रिवेदी अब फिर इस बात की प्रतीक्षा कर रहा है कि हिन्दी का कोई प्रसिद्ध लेखक मरे और वह अपनी पत्रिका का विशेषांक निकाले और अमुक की स्मृति में निकालकर अपने को मालामाल कर सके। देखो—उसकी यह मनोकामना कब पूरी होती है?"'

बारह

था। वह मेरे कमरे में बैठकर कमरे के एक-एक कोने को बड़े ध्यान से देखता। उसे देखकर मैं अपने मन मे सोचता—यह लड़का जब भी मेरे कमरे में आता है, आंखें फाड़-फाड़कर पता नही यह क्या देखता है ? शायद यह मेरी गरीबी देखकर भीतर-ही-भीतर कुछ सोचता है। तुम्हे तो पता ही है कि मेरा घर बाजार के बीच में ही था। मेरी जमीन लगभग पंद्रह हजार वर्ग फुट रही होगी। एक कोने पांच कच्चे कमरे बने हुए थे। बाकी परती जमीन थी। उस पर कुछ पेड़-पौधे लगे हुए थे। आस-पास के प्रायः सभी मकान व्यापारियों के थे, अतः पक्के बने हुए थे। उस मुहल्ले में केवल मेरा ही घर खपरैल था, जिसे झोंपड़ी ही कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।"

"नहीं, नहीं, आपका घर इतना बुरा तो नहीं था कि उसे कोई झोंपड़ी कहता।"—मनोहर ने प्रतिवाद किया।

"मनोहर, तुम चाहे जो भी कह लो, वास्तव में वह झोंपड़ी ही थी।"

इस बार मनोहर ने कुछ भी नहीं कहा।

"एक दिन सावरिया मेरे घर आया। उस समय मेरे कमरे में हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० कामिल बुल्के बैठे हुए थे। कमरे में घुसते ही सावरिया ने मुझसे कहा—नमस्ते अंकलजी।—यह सुनकर डॉ० बुल्के ने सावरिया को एक बार बड़े गौर से देखा। मैंने डॉ० बुल्के को सावरिया का परिचय दिया। इस पर डॉ० बुल्के ने सावरिया से पूछा—आपने कृष्णकांतजी को अभी अंकल कहा था ? सावरिया ने जवाब दिया—जी। ये मेरे अंकल हैं।

—अंकल माने क्या ? [illegible] मौसा है।

—जब ये आपके चाचाजी हैं तो आप साफ-साफ चाचाजी या ताऊजी क्यों नहीं बोलते ? आपकी भाषा इतनी समृद्ध है कि हर संबंध के लिए इसमें अलग-अलग शब्द हैं फिर भी आप अंगरेजी जैसी विदेशी भाषा का उपयोग करते हुए जरा भी नहीं लज्जा करते ? अंगरेजी तो एक लाचार भाषा है, जिसमें चाचा, मामा, मौसा और फूफा के लिए एक ही शब्द है—अंकल।

सावरिया ने यह सुनकर चुपचाप अपना माथा झुका लिया। इस घटना के बाद उसने मुझे अंकल के बदले चाचाजी कहना शुरू कर दिया।

डॉ० बुल्के बहुत देर से बैठे हुए थे, अतः वह चले गए।"

"इसके बाद क्या हुआ?"—मनोहर पूछ बैठा।

"अरुण अब तक नही आया था। गली मे एक ट्रक घुस आया था। ड्राइवर लगातार हार्न बजाये जा रहा था, फलत. बातचीत करने में असुविधा होने लग गई। हम दोनों ने अपने-अपने कानों पर हथेली रख दी। जब हॉर्न का बजना बंद हो गया, सावरिया ने मुझसे कहा—चाचाजी, आप ठहरे लेखक, आपको तो शांत वातावरण चाहिए, जहां आप शांति के साथ लिख-पढ सकें। यह जगह अब आपके लायक नही रही। बीच बाजार में होने के कारण यहां तो दिन भर ट्रकों का आना-जाना लगा रहता है।

—हां सावरिया। अब यहां रहने में बड़ी असुविधा होती है। दिन तो खैर हल्ले-गुल्ले मे किसी प्रकार कट जाता है, मगर अब रात को भी यहां चैन नही मिल पाता। इधर कुछ महीनों से इस गली में अब ट्रकों का आना-जाना रात के समय विशेष रूप से बढ गया है। नतीजा यह है कि रात को ठीक से सो भी नही पाता हू।—मैंने कहा।

—यदि आप चाहें तो मेरे बगीचे मे जाकर रह सकते हैं। मेरा बगीचा खाली ही है। बगीचे मे एक कोठी है, जिसमे आप सभी लोग बहुत आराम से रह सकते हैं। करीब-करीब पच्चीस कट्ठा जमीन में मेरा बगीचा फैला हुआ है। बगीचे के शांत और मोहक वातावरण मे आप और भी ज्यादा अच्छा लिख सकेंगे।—सावरिया ने बड़े अपनत्व के साथ कहा।

इस बीच अरुण आ गया। वह चुपचाप सावरिया की बगल में आकर बैठ गया।

—पर इस जगह का क्या होगा?—मैंने पूछा।

—आप इसे बेच दीजिए। आपको इस जगह की अच्छी कीमत मिल जाएगी।—सावरिया ने एक अनुभवी दलाल की तरह सोचकर बताया।

—तुम्हारा क्या अंदाज है, कितना मिल सकता है?—मैंने फिर पूछा।

—दो लाख तो मिल ही सकते हैं।—सावरिया सोचने की भंगिमा बनाकर बोला।

—दो लाख!—यह राशि सुनकर जरा मैं सोच में पड गया; क्योकि मुझे यह आशा नही थी कि मेरी जमीन की कीमत इतनी ऊंची भी लग सकती है।

—हां चाचाजी, दो लाख से कम किसी भी हालत में नही मिलना चाहिए।—सावरिया ने बडे विश्वास के साथ यह बात कही।

यह सुनकर मैं कुछ देर तक सावरिया को देखता रह गया।

सांवरिया ने वार्ता जारी रखते हुए आगे कहा—चाचाजी, यदि आपके मन मे कभी यह जमीन बेचने की बात उठे तो सबसे पहले आप मुझे अवश्य बताने की कृपा करेंगे।

यह बोलकर सावरिया हसने लग गया और मैं उसकी उस हसी का अर्थ समझने का प्रयास करने लगा।

सावरिया अरुण को अपने साथ लेकर चला गया।"

"फिर इस घटना के बाद क्या हुआ ?"—मनोहर अधीर हो रहा था आगे जानने के लिए।

"इस घटना के बाद सावरिया ने मुझ पर कई बार यह जोर डाला कि मैं अपना घर बेच दू। उसने इसके कई प्रकार के फायदे भी मुझे बताए। एक ओर वह मुझे समझाता और दूसरी ओर अरुण को भी उकसाता। अरुण इस विषय पर बात करते हुए मुझसे डरता था, अत: यह अपनी मां को ही बरगलाने का प्रयास करता।"

"तब ?"

"धीरे-धीरे मुझे यह अनुमान लग गया कि मेरी जमीन की कीमत कम-से-कम पाच लाख रुपए मिल सकती है। यह जानने के बाद एक दिन मैंने सावरिया को बुरी तरह झिडक दिया—सावरिया, मै यह घर अपने जीते-जी कभी नही बेचूगा। यह मेरे बाप-दादा की अमानत है। यह जैसा भी है, मेरा है। यहा अभावो और परेशानियों मे रहकर भी मैं इस खण्डहर मे बहुत मस्त [redacted]। मेरे मन मे लाखो रुपए की कोई भूख नही है। आज के बाद तुम मुझसे यह कभी मत पूछना कि मैंने इस घर को बेचने के बारे में क्या सोचा है ?"

"तब तो सावरिया को बहुत बुरा लगा होगा ?"—मनोहर का प्रश्न था।

"हा, सावरिया को मेरी बात बहुत बुरी लगी। मेरी इस झिडकी के बाद लगभग तीन-चार महीनो तक वह मेरे घर मे और नजर नही आया। इस अवधि के बाद जब वह आया तो उसने मुझसे माफी मागते हुए कहा —चाचाजी, उस दिन की बात के लिए मै बहुत शर्मिंदा हू। उस दिन अपनी बेवकूफी से मैंने आपका दिल दुखा दिया था, अत: मैं हाथ जोडकर आपसे क्षमा चाहता [redacted]।—सावरिया की पीठ पर हाथ रखते हुए मैंने कहा—अरे! मैं तो वह बात भूल भी गया। छोडो उस दिन की बात को। कहां रहे इतने दिनो तक ? बिलकुल दिखायी नही दे रहे थे ? कही बाहर गये थे क्या ?"

"क्या उत्तर दिया सांवरिया ने ?"—मनोहर का सवाल था।

"सांवरिया ने झेंपते हुए कहा—नहीं, मैं बाहर नहीं गया था। बस आपके डर से यहां नहीं आ रहा था।—यह सुनकर मुझे जोर की हंसी आ गयी थी। लेकिन, आज वही सांवरिया जिसने मेरी एक झिड़की के बाद महीनों अपना चेहरा मुझे नहीं दिखाया था, मेरे मरने के बाद अब मेरे घर में उसका आना-जाना बेहद बढ़ गया है। अब कमला उसे अपना बेटा मानने लग गयी है और संगीता तथा विनीता उसे अपना भाई मानने लगी हैं।"

"अच्छा।"—मनोहर विस्मित था।

"मेरी मृत्यु के बाद जो पहला रक्षा-बंधन का अवसर आया, उस दिन सांवरिया अपनी कार लेकर मेरे घर आया। संगीता और विनीता ने उसे राखी बांधने के लिए बुलाया था।

संगीता ने पहले सांवरिया की कलाई में राखी बांधी। बर्फी का एक टुकड़ा अपने मुंह में रखते हुए सांवरिया ने संगीता से कहा—संगीता, जरा तुम अपनी दोनों आंखें तो बंद कर लो।

संगीता संकोच में पड़ गयी। विनीता बगल में खड़ी थी, अतः उसने बेखौफ अपनी दोनों आंखें बंद कर लीं। सांवरिया ने संगीता की पीठ की ओर खड़े होकर संगीता के गले में सोने की एक जंजीर पहना दी। अपने गले में सोने की जंजीर देखकर संगीता—एक गरीब लेखक की बेटी, जिसने जीवन में पहली बार सोने की जंजीर अपने गले में पहनी थी—नाच उठी। उसका रोम-रोम सांवरिया भैया के प्रति कृतज्ञ हो उठा।

लेकिन, मनोहर, इस दृश्य को देखकर मेरी आत्मा पर जो बीती, वह एक बाप कभी भी व्यक्त नहीं कर सकता।"

"इसके बाद ?"—मनोहर अधीर हो रहा था।

"इसके बाद विनीता ने सांवरिया को राखी बांधी। राखी बंधवाने के बाद सांवरिया ने विनीता से कहा—विनीता, अपने दोनों हाथ मेरी ओर बढ़ाओ।

विनीता ने वैसा ही किया।

सांवरिया ने विनीता के दोनों हाथों में सोने के कंगन पहना दिए। कंगन पहन कर विनीता भी निहाल हो गयी। दोनों बहनों ने जाकर कमला को अपनी-अपनी चीजें दिखलायीं।

कमला कुछ भी नहीं बोल सकी। एक गहरी सांस खींचकर केवल उसने यह कहा—सुन्दर है।

उस दिन सांवरिया ने संगीता और विनीता से राखी बंधवायी थी।

अब वह दोनों बहनों का भाई बन गया था। लेकिन भाई के रूप में संगीता के गले में जंजीर और विनीता के हाथों में कंगन पहनाते हुए उसके हृदय में जो कुत्सित भाव उठ रहे थे उस समय, उन्हें केवल मैं ही जान सका; क्योंकि अब मैं एक आत्मा हूं। सावरिया तो दो कुमारियों को गहने पहनाने और उनके कोमल शरीर को छू पाने का दुर्लभ स्पर्श-सुख प्राप्त कर रहा था। मुझे तुम्हें यह बताने में कोई लज्जा नहीं है मनोहर, कि सावरिया की मेरी दोनों बेटियों पर शुरू से ही बुरी नजर रही है। विशेष कर विनीता के लिए तो सावरिया आज भी पागल है। वह जब भी मेरे घर आता किसी-न-किसी बहाने वह विनीता को एक बार अवश्य देखने की कोशिश करता। जब वह विनीता को देख लेता तभी वह मेरे घर से टलता।"

"मैं नहीं जान रहा था कि सावरिया इस प्रकार का आदमी है।"—मनोहर बोला।

"मनोहर, मेरे मरने के बाद, मेरे घर में ही एक ऐसा नाटक प्रारम्भ हो गया, जिसके बारे में मैंने कभी भी कल्पना नहीं की थी। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह हुआ कि सब कुछ समझ कर भी कमला कुछ बोलने की स्थिति में नहीं थी। मेरे घर में अब सभी सांवरिया के प्रशंसक बन गये थे। संगीता और विनीता तो सावरिया की प्रशंसा करते हुए थकती ही नहीं थी। अरुण तो सावरिया का गुलाम ही बन गया था। वह दिन भर उसी के पीछे-पीछे लगा रहता। अमर भी सावरिया का मुरीद था, क्योंकि सावरिया उसे कभी-कभी चुपके से विदेशी शराब की बोतलें लाकर दे दिया करता था।"

"यह तो बहुत ही बुरा हुआ।"—मनोहर की टिप्पणी थी।

"रक्षा-बंधन की रात को सावरिया और अमर एक रेस्तरां में बैठे थे। अमर पी रहा था और सावरिया उसे पिलाये जा रहा था। सावरिया ने विशेष तौर पर आज अमर को बुलाया था। मेरे युवराज पर नशा सवार होने लग गया। अब वह बोल रहा था—सावरिया, आज तो तुमने जबर्दस्त सरप्राइज दिया है···तुमने सबको चौंका दिया···संगीता, पूछो मत कि आज वह कितनी खुश है···सोने की जंजीर पहन कर···विनीता भी बहुत खुश है···सोने के कंगन पहन कर···दोनों बहुत खुश हैं···मां भी आज बहुत खुश है···वह बोलती है···बेटा हो तो सावरिया जैसा···संगीता और विनीता बोलती हैं···भाई हो तो सावरिया जैसा···सावरिया बाबू, आज तुमने सबके ऊपर जादू कर दिया···

सावरिया ने अमर के गिलास में थोड़ी व्हिस्की और डाल दी। सोडा अमर ने स्वयं मिलाया। एक घूंट पीकर वह फिर बोलने लगा—सावरिया

भाई···मैं झूठ नहीं बोलता···मैं तुमसे कभी भी झूठ नहीं बोलूंगा···मैं सच बोल रहा हूं···एकदम सच···आज तुमने मेरे घर के हर आदमी पर जादू कर दिया···मां पर भी···संगीता पर भी···विनीता पर भी···अरुण तो तुम्हारा दोस्त ही है···और मैं ? मैं तुम्हें अपना छोटा भाई मानता हूं···तू मेरा भाई है···मगर सच बोलता हूं···तू बहुत बड़ा जादूगर है···तू बहुत बड़ा जादूगर है रे···

यह बोलते हुए मेरा युवराज टेबुल पर ही ढेर हो गया।"

तेरह

"मनोहर, तुम्हें तो पता ही है कि मैं शिक्षा विभाग के द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका—नीति—का सम्पादक था। तुम्हें यह भी मालूम ही है कि साहित्य-जगत् में—नीति—का कितना सम्मान है। पर, शायद तुम्हें यह बात मालूम नहीं होगी कि मैं नीति का संस्थापक-सम्पादक था।"

"मुझे यह बात भी मालूम है।"—मनोहर ने जरा संकोच के साथ कहा।

"तब तुम्हें यह नहीं मालूम होगा कि मैं इस मासिक का सम्पादक कैसे बनाया गया था?"

"जी, आपने ठीक कहा। मैं इसके बारे में कुछ भी नहीं जानता।"—मनोहर की स्वीकृति थी।

"बहुतों को आज यह बात मालूम नहीं है कि कृष्णकांत की शैक्षणिक योग्यता क्या है। मेरे मरने पर मेरा जो पद रिक्त हुआ उसे भरने के लिए जो विज्ञापन प्रकाशित किया गया, उसमें यह कहा गया है कि प्रत्याशी को कम-से-कम हिन्दी में एम० ए० होना चाहिए। पर, मैं एम० ए० बे० मे० कुछ नहीं था। मैं तो मिडिल फेल था।"

"फिर आप नीति के सम्पादक कैसे बन गए थे?"—मनोहर ने बड़े ताज्जुब के साथ पूछा।

"तुमने ठीक ही सवाल पूछा। मैं इसका कारण बताता हूं। सन् 1940 से 1950 के बीच में खूब लिखता रहा था। मेरा लेखन स्वतंत्रता-संग्राम से कहीं-न-कहीं जुड़ा रहता था। मेरी रचनाओं से युवकों के बीच अंगरेजों से जूझने की प्रवृत्ति पैदा होती थी। इसके कारण मेरी रचनाओं को लोग बड़े चाव से पढ़ा करते थे। 15 अगस्त 1947 को देश स्वतंत्र हुआ.

सरकार बनी। हमारे राज्य के शिक्षा मंत्री आचार्य मेघनारायण शर्मा हुए। वह सच्चे साहित्य-प्रेमी तथा विद्या-प्रेमी थे। वह मेरी रचनाओं के बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने स्वयं सरकार के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि राज्य सरकार की ओर से एक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन किया जाय और इसका सम्पादक कृष्णकांतजी को बनाया जाय। सरकार ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। 'नीति' का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। मेरे संपादक बनाये जाने पर विधान सभा में एक सदस्य ने प्रश्न किया—कृष्णकांतजी तो मिडिल फेल हैं, फिर उन्हें सरकार ने 'नीति' का संपादक क्यों बनाया है? —इस प्रश्न का उत्तर मुख्य मंत्री ने स्वयं दिया—कृष्णकांतजी हमारे राज्य के ही नहीं बल्कि पूरे देश के एक प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। उन्हें 'नीति' का संपादक बनाकर हमारी सरकार ने उन पर कोई कृपा नहीं की है। यह तो कृष्णकांतजी की हमारी सरकार और हमारे राज्य पर कृपा है कि उन्होंने 'नीति' का संपादक बनना स्वीकार कर लिया है।"

"वाह! इसे ही कहते हैं मुहतोड़ जवाब। मुख्य मंत्रीजी ने तो कमाल कर दिया था।"—मनोहर ने गद्‌गद्‌ होते हुए कहा।

"मनोहर, उस समय के राजनीतिज्ञ कुछ और किस्म के हुआ करते थे। वे लोग आज के मंत्रियों की तरह चरित्रहीन और टुच्चे नहीं हुआ करते थे। वे साहित्यकारों का सम्मान करना जानते थे। लेकिन, न तो अब वैसे मंत्री ही दिखाई देते हैं और न साहित्यकार ही। आज के साहित्यकार तो मंत्रियों के पीछे-पीछे चलने में अपने लिए सम्मान की बात मानते हैं। अब तो हर तरफ उल्टी गंगा बहने लगी है।"

"आपने ठीक ही कहा है।"

"मेरी मृत्यु के बाद मेरे सहायक संपादक को कार्यकारी संपादक बना दिया गया। उसने शिक्षा विभाग के निदेशक के पास एक पत्र भेजा जो इस प्रकार था—

सेवा में,

डॉ० व्रजकिशोर,
निदेशक, शिक्षा विभाग,

....

विषय —'नीति' का कृष्णकांत विशेषांक

महाशय,

आपको ज्ञात ही है कि स्वर्गीय कृष्णकांतजी 'नीति' के संस्थापक-संपादक थे। उन्होंने अपनी लगन और मेहनत से 'नीति' को एक ऐसा रूप

प्रदान किया कि आज समूचे देश में इस पत्रिका का अत्यन्त गौरवमय स्थान है। स्वर्गीय कृष्णकांतजी हमारे राज्य के ही नहीं अपितु पूरे देश के एक बहुचर्चित एवं सम्मानित साहित्यकार थे।

स्वर्गीय कृष्णकांतजी ने 'नीति' तथा हिंदी साहित्य की जो अमूल्य सेवा की है, उसे ध्यान में रखते हुए मेरा यह प्रस्ताव है कि 'नीति' एक कृष्णकांत विशेषांक प्रकाशित करे। ऐसा करना प्रत्येक दृष्टि से उचित होगा। राज्य की ओर से स्वर्गीय कृष्णकांतजी को यह एक स्मरणीय श्रद्धांजलि होगी। मैं यह विशेषांक मई में प्रकाशित करना चाहता हूं।

आशा है, इस प्रस्ताव को आप अपनी स्वीकृति प्रदान करने की अनुकंपा करेंगे।

आपका विश्वासभाजन
सुरेन्द्र कुमार
कार्यकारी संपादक
'नीति'

जानते हो मनोहर, इस पत्र को पढ़कर निदेशक याने डॉ० व्रजकिशोर ने क्या किया?"

"नहीं, मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम।"—मनोहर ने स्पष्ट कहा।

"डॉ० व्रजकिशोर ने सुरेन्द्र कुमार को फौरन सचिवालय में बुलाया। सुरेन्द्र कुमार दौड़ा-दौड़ा सचिवालय गया। वह निदेशक के कक्ष के सामने तीन घंटे तक बैठा रहा। डॉ० व्रजकिशोर ने जान-बूझकर सुरेन्द्र कुमार को भीतर नहीं बुलाया। लगभग शाम को साढ़े पांच बजे निदेशक ने उसे अपने कक्ष में बुलाया। सुरेन्द्र को इशारे से बैठने के लिए कहा गया। वह कुर्सी पर बैठ गया। डॉ० व्रजकिशोर ने सुरेन्द्र की ओर एक बार जलती हुई आंखों से देखा। सुरेन्द्र यह देखकर जरा सहम-सा गया। लो, अब दोनों की बातचीत सुनो—

डॉ० व्रजकिशोर—यह पत्र आपने लिखा है?

सुरेन्द्र—जी, सर।

डॉ० व्रजकिशोर—क्या आपका दिमाग चरने चला गया है?

सुरेन्द्र [चौंककर]—क्या हुआ सर? कोई भूल हो गयी क्या?

डॉ० व्रजकिशोर आपके दिमाग में यह बात आयी कैसे कि 'नीति' का एक विशेषांक निकलना चाहिए और उसका नाम होना चाहिए—कृष्णकांत विशेषांक?

सुरेन्द्र—कृष्णकांतजी के नाम पर एक विशेषांक प्रकाशित करना राज्य सरकार और 'नीति' का नैतिक दायित्व है, सर।

डॉ० ब्रजकिशोर—यानी आप सरकार को उसका नैतिक दायित्व याद करवा रहे हैं ? यानी आप जो कहना चाहते हैं उसका अर्थ यह है कि हमारे जैसे बड़े-बड़े अधिकारी जो यहां बैठे हैं वे गधे हैं और उन्हें अपने तथा सरकार के दायित्व की कोई परवाह नहीं है ?

सुरेन्द्र— सर, मेरा मतलब यह नहीं था।

डॉ० ब्रजकिशोर—'नीति' का कार्यकारी संपादक बने कितने दिन हुए हैं आपको ?

सुरेन्द्र—कुछ ही दिन हुए हैं, सर।

डॉ० ब्रजकिशोर—तो चींटी के पर इतनी जल्दी कैसे निकल आए ?

सुरेन्द्र—सर…

डॉ० ब्रजकिशोर—आज ही आप कार्यकारी संपादक हुए हैं और आप चले हैं—कृष्णकांत विशेषांक निकालने ! आखिर यह विशेषांक क्यों प्रकाशित होना चाहिए ?

सुरेन्द्र—क्योंकि कृष्णकांतजी अब हमारे बीच नहीं रहे।

डॉ० ब्रजकिशोर—तो क्या जब मैं मर जाऊंगा तब भी तुम मेरे नाम पर 'नीति' विशेषांक प्रकाशित करोगे ? [डॉ० ब्रजकिशोर ने जान-बूझकर इस बार "तुम" शब्द का प्रयोग किया।]

सुरेन्द्र—कृष्णकांतजी की बात और है, सर।

डॉ० ब्रजकिशोर—कृष्णकांतजी की बात कुछ और क्यों है ? वह तो मेरे अधीनस्थ थे। जब मेरे मातहत काम करने वाले एक संपादक के नाम पर 'नीति' का विशेषांक निकाला जा सकता है, तब मेरे मरने पर मेरे नाम का विशेषांक क्यों नहीं निकाला जा सकता ?

सुरेन्द्र—सर, कृष्णकांतजी एक महान् साहित्यकार थे—और आप…

डॉ० ब्रजकिशोर—और—और—आगे क्यों नहीं बोलते आप ? बोलिए, बोलिए कि कृष्णकांतजी एक महान् साहित्यकार थे और आप एक अधिकारी हैं—और अधिकारी के मरने पर विशेषांक प्रकाशित नहीं किया जा सकता—सुन लीजिए, मिस्टर सुरेन्द्र कुमार—यदि मेरे मरने पर 'नीति' का विशेषांक छापा जाना संभव नहीं है तो कृष्णकांत के नाम पर भी कोई विशेषांक नहीं निकलेगा—यदि आपने कृष्णकांत के बारे में 'नीति' में कुछ भी छापा तो मैं आपकी नौकरी खा जाऊंगा…गेट आउट…

डॉ० ब्रजकिशोर ने सुरेन्द्र कुमार की उपस्थिति में ही उसके पत्र को टुकड़े-टुकड़े कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया।"

"डॉ० ब्रजकिशोर आपके नाम से इतना अधिक नाराज क्यों थे ?"—मनोहर ने प्रश्न किया।

"इसके पीछे भी एक कहानी है।"—कृष्णकांतजी की आवाज थी।

"जरा वह कहानी भी बताइए न?"—मनोहर का अनुरोध था।

"यह उन दिनों की बात है, जब 'नीति' से मेरे सेवामुक्त होने मे केवल पाच-छह महीने ही बच रहे थे। एक दिन तड़के ही डॉ० व्रजकिशोर का चपरासी आया। उसने कहा—साहब ने सलाम कहा है।

—कोई विशेष बात है, क्या?—मैंने पूछा।

—अभी आपको चाय पर बुलाया है।—चपरासी ने बताया।

—ठीक है। चलो। मैं अभी आता हू।—मैंने चपरासी से कहा। चपरासी चला गया।"

"फिर आपने क्या किया?—मनोहर ने पूछा।

"चपरासी के जाने के बाद मैं जरा सोच मे पड़ गया। साहब ने बुलाया है वह भी चाय पर···इसी पर मैं सोचने लग गया। इसके पहले तो डॉ० व्रजकिशोर ने मुझे कभी भी चाय पर नही बुलाया था। आखिर, आज ऐसी क्या बात हो गयी, जो उन्होंने मुझे चाय पर बुलाया है। इसका मैं कोई कारण नही समझ सका। मैंने सोचा—होगी कोई खास बात।"

"तब आपने क्या तय किया?"—मनोहर का अगला सवाल था।

"मनोहर, करना क्या था? जाना ही था। मैं गया। डॉ० व्रजकिशोर बरामदे पर बैठे मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे देखते ही वह उठ खड़े हुए। आगे बढ़कर उन्होंने मुझे अपने गले से लगा लिया। वह बोलने लगे—कृष्णकांतजी, आप मेरे घर पर आए, यह मेरा सौभाग्य है। आज मेरी कुटिया भी पवित्र हो गई। आइए, भीतर आइए।

भीतर के कमरे मे जलपान की व्यवस्था थी। कहना चाहिए वहाँ जलपान की सामग्रियों की प्रदर्शनी लगी थी। प्रदर्शनी देखकर ही मेरा मन भर गया।

डॉ० व्रजकिशोर ने बड़े आदर के साथ मुझे बिठाया। अधिक-से-अधिक खाने के लिए मुझ पर वह जोर डालने लग गए। मैंने थोड़ी सी निमकी ले ली। इसके बाद काफी भी पी।

जलपान के बाद हम बैठक मे आए। डॉ० व्रजकिशोर की पत्नी चांदी की छोटी-सी ट्रे मे पान लेकर हाजिर हो गईं। मैंने पान उठा लिया। इसके बाद लगभग आध घटे तक डॉ० व्रजकिशोर मेरी रचनाओं, घर, परिवार आदि के संबंध में पूछ-ताछ करते रहे। आज पहली बार वह मुझमे और मुझसे संबंधित मामलों मे रुचि ले रहे थे। उन्होंने स्वय कहा—मैंने तो यह पहले ही तय कर लिया है कि मैं आपको रिटायर नही होने दूगा। मैं आपको दो वर्षों का एक्सटेंशन दिलवा कर रहूगा। शायद आपको मालूम

ही होगा कि मुख्य मंत्री मेरे सहपाठी हैं। आप यही समझिए कि आपको अभी 'नीति' में बने रहना है। आप जैसे महान् लेखक की सेवाओं से हम 'नीति' को कभी भी वंचित करना नहीं चाहेंगे।

—यह तो आपकी गुणग्राहकता है, जो आप मेरे बारे में ऐसा सोचते हैं।—प्रशंसा में मैं भी बोल गया।

—जो अपने होते हैं या दिल जिन्हें अपना मानता है, उनके लिए तो कुछ करना ही पड़ता है। ऐसी स्थिति में यदि कुछ गलत भी करना पड़ता है तो आदमी पीछे नहीं हटता।—यह बोलकर डॉ० ब्रजकिशोर बेवजह खिलखिलाने लगे।"

"इसके बाद क्या हुआ ?"—मनोहर के मन में कौतूहल जाग्रत था।

"डॉ० ब्रजकिशोर ने अभी-अभी कहा था—ऐसी स्थिति में यदि कुछ गलत भी करना पड़ता है तो आदमी पीछे नहीं हटता—यह वाक्य मेरे मस्तिष्क में घूमने लगा। मैं समझ नहीं पा रहा था कि यह बात उन्होंने क्यों कही और कही तो उसका सही संदर्भ क्या हो सकता है ? मैं सोच ही रहा था कि डॉ० ब्रजकिशोर बोल पड़े—कल मुख्य मंत्रीजी ने मुझे बुलवाया था। आप तो जानते ही हैं कि अगले सप्ताह संजय गांधी यहां आने वाले हैं। इसी को लेकर वह बहुत चिंतित थे।

—क्यों ?—मैंने पूछा।

—संजय गांधी को एक मान-पत्र देना है, ऐसा मान-पत्र जिसे पढ़कर संजय गांधी गद्‌गद् हो जायें। इसके लिये उन्हें कोई सही आदमी नजर नहीं आ रहा था, जो उनके मन के मुताबिक मान-पत्र लिख सके। उन्होंने अपना दु:ख मुझसे कहा। मैंने तुरंत आपका नाम उनके सामने पेश कर दिया और कहा—कृष्णकांतजी के सिवाय यह काम दूसरा कोई भी आदमी नहीं कर सकता। यह सुनते ही मुख्य मंत्री खुश हो गए। अब आप भी खुश हो जाइए, कृष्णकांतजी कि यह सुनहरा अवसर आपको प्राप्त हुआ है कि आप देश के भावी प्रधान मंत्री के लिए मान-पत्र लिखें। एक बात और ?

—क्या ?—मैंने पूछा।

—मुख्य मंत्रीजी कह रहे थे कि इस बार वह आपका नाम पद्म श्री के लिए भेजेंगे।—डॉ० ब्रजकिशोर ने ऐसे कहा मानो वह किसी गोपनीय बात को सरेआम बोल रहे हों।"

मनोहर ने तपाक से पूछा—"तब आपने उन्हें क्या उत्तर दिया ?"

"मनोहर, डॉ० ब्रजकिशोर की बातों को सुनकर मेरे मुँह का स्वाद एकाएक बदल गया। मेरे जी में आया कि गले में उंगली डाल-डाल कर वह सब उल्टी कर दूं जो मैंने अभी-अभी खाया-पीया था। वैसा तो मैं नहीं कर

सका, पर मुझे वहां उबकाई जरूर आने लगी। मेरे मौन को डॉ० व्रजकिशोर ने स्वीकृति मान लिया और वह फिर बोल पड़े—तो आज शाम तक मैं आशा करता हूं कि आप मान-पत्र लिख ही लेंगे। अरे, आपके लिए क्या है? आपके लिए तो मान-पत्र लिखना बाएं हाथ का खेल है।"

"फिर?"—मनोहर था।

"मैं तो भीतर-ही-भीतर उबल रहा था। फिर भी मैंने अपने को यथा-संभव नम्र बनाते हुए कहा—मैंने आज तक मान-पत्र लिखने का काम कभी नहीं किया है।

—मैं जानता हूं कि आप मान-पत्र नहीं लिखा करते हैं। आप जैसे बड़े साहित्यकार को यह काम करना भी नहीं चाहिए। आप बिलकुल ठीक करते हैं, जो किसी के लिए मान-पत्र नहीं लिखते। मगर, यह तो संजय गांधी की बात है। आप जानते ही हैं कि आज संजय गांधी की क्या धाक है। यह काम आपको ही दिया गया है, यह तो आपके लिए सौभाग्य एवं गौरव की बात है।

—मुझे आप क्षमा करें। मैं यह काम नहीं कर पाऊंगा।—मैंने अपना फैसला सुना दिया।

—कृष्णकांतजी, यह मैं आपके मुंह से क्या सुन रहा हूं? यदि आप मान-पत्र नहीं लिखेंगे तो मैं मुख्य मंत्रीजी को क्या उत्तर दूंगा? जरा इस पर भी आप सोचिए।—डॉ० व्रजकिशोर की बातों में अनुरोध का भी पुट था और धमकी का भी।

—यह मेरा सिद्धांत है कि मैं मान-पत्र नहीं लिखता चाहे वह प्रधान मंत्री का हो या भावी प्रधान मंत्री का या किसी और का। अब मुझे अनुमति दीजिए। मैं चलना चाहूंगा।—मैंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया।—मैं वहां एक पल भी ठहरना नहीं चाह रहा था, अतः सोफे से उठकर खड़ा हो गया।

—कृष्णकांतजी, आप बहक में आकर जो बोल गए, क्या आप उसका अर्थ समझ रहे हैं?—डॉ० व्रजकिशोर ने धमकी भरे शब्दों में पूछा।

—अर्थ जानकर ही मैं शब्दों का प्रयोग करता हूं। अच्छा, नमस्ते।—यह बोलकर मैं उनके मकान से बाहर आ गया।"

"फिर तो डॉ० व्रजकिशोर ने बड़ा बावेला मचाया होगा?"—मनोहर की आशंका थी।

"हां मनोहर, यह आदमी मुझसे बदला लेने पर तुल गया। यह मेरा दुश्मन बन गया। सेवा मुक्त होने के बाद मैंने बड़ी कोशिश की कि पेंशन का भुगतान शुरू हो जाय, लेकिन इस आदमी के कारण ऐसा नहीं हो सका। अब तो मेरे मरे भी दो वर्षों का समय गुजर गया, फिर भी पेंशन का

मामला अब तक ज्यों-का-त्यों अटका हुआ है। जब तक यह आदमी कुर्सी पर है शायद वह मेरा काम कभी भी नहीं होने देगा।"

"पेंशन के मामले में तो कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए थी।"—मनोहर का ख्याल था।

"होनी तो नहीं ही चाहिए थी, पर डॉ० ब्रजकिशोर के बच्चे ने एक नई अड़चन पैदा कर दी है।"

"कैसी अड़चन ?"—मनोहर का सवाल था।

"सेवामुक्त हुए जब एक वर्ष का समय गुजर गया और पेंशन का भुगतान प्रारम्भ नहीं हो सका तो मैंने डॉ० ब्रजकिशोर के नाम एक निर्बंधित पत्र भेजा। उस पत्र का जो मुझे उत्तर मिला, वह इस प्रकार है—

प्रेषक—

डॉ० ब्रजकिशोर,
निदेशक, शिक्षा विभाग,
अमुक सरकार,
....

सेवा में—

श्री कृष्णकांत,
भैंसा टोली,
....

विषय—पेंशन का भुगतान

महाशय,

उपर्युक्त विषय पर आपका पत्रांक शून्य दिनांकित.........मिला। धन्यवाद।

आपकी "सेवा पुस्तिका" के अवलोकन से यह ज्ञात हुआ है कि आपने हिन्दी की विभागीय परीक्षा में अब तक उत्तीर्णता प्राप्त नहीं की है। सेवा पुस्तिका में इस बात का भी कहीं उल्लेख नहीं है कि आपकी शैक्षिक योग्यता क्या है ? अतः आपसे अनुरोध है कि आप अपनी शैक्षिक योग्यता यानी हिंदी विषय में एम० ए० पास होने का प्रमाण-पत्र भेजें। साथ में हिंदी की विभागीय परीक्षा में भी उत्तीर्ण होने का प्रमाण-पत्र यथाशीघ्र प्रस्तुत करें ताकि पेंशन के मामले को निपटाया जा सके।

उक्त दोनों प्रमाण-पत्र आप सीधे पेंशन कार्यालय को भेजें।

आपको यह परामर्श भी दिया जाता है कि भविष्य में इस विषय पर

आप मुझसे सीधे पत्राचार न कर संबद्ध अधिकारियों से ही पत्राचार करने की कृपा करें।

आपका विश्वासभाजन
ह० ब्रजकिशोर
निदेशक, शिक्षा विभाग"

"इसके बाद आपने क्या किया?"—मनोहर पूछ बैठा।

"मुझे जो करना चाहिए था, मैंने वह किया। मगर यह देखो कि डॉ० ब्रजकिशोर ने मेरा कितना बड़ा उपहास किया है! इस पत्र का सीधा अर्थ यह था कि कृष्णकांत हिंदी नहीं जानता। मैं यदि हिंदी जानता हूं तो डॉ० ब्रजकिशोर को इसके लिए प्रमाण-पत्र चाहिए। बोलो, कौन है इस देश में जो मुझे हिंदी का प्रमाण-पत्र दे सकता है? तुम्हीं बताओ कि यह कृष्णकांत किससे कहे कि मुझे एक प्रमाण-पत्र चाहिए कि मैं हिंदी भी जानता हूं। सुना तुमने? मैंने हिंदी की विभागीय परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त नहीं की है? जब मैं यह परीक्षा पास करूंगा तब मुझे पेंशन मिलेगी। जब मैं डॉ० ब्रजकिशोर के सचिवालय को यह प्रमाण-पत्र दूंगा कि मैं हिंदी में एम० ए० हूं तब मुझे पेंशन मिलेगी। भाड़ में जाए डॉ० ब्रजकिशोर, चूल्हे में जाए यह सरकार जिन्हें मेरे हिंदी-ज्ञान पर शक है। मैं लात मारता हूं ऐसी सरकार और उसकी पेंशन को। मैंने तय कर लिया था कि मुझे पेंशन मिले या न मिले लेकिन मैं डॉ० ब्रजकिशोर के सामने जाकर कभी भी गिड़गिड़ाऊंगा नहीं। वह आदमी यही तो चाह रहा था कि मैं उसके सामने जाऊं और उसकी खुशामद करूं। मुझे खुशी है कि मैं डॉ० ब्रजकिशोर के पास कभी नहीं गया। जब मुझे अपने जीवन-काल में पेंशन नहीं मिल सकी तो अब उसकी चिंता मैं क्यों करूं?"

चौदह

"13 फरवरी को मेरी पहली पुण्य-तिथि पड़ी। अपने नगर में इस दिन कई कार्य-क्रम आयोजित किए गए और मुझे लगा कि मेरे नगर ने मुझे भुलाया नहीं है। कार्य-क्रम तीन प्रकार के थे। पहले कार्य-क्रम में डॉ० सोमनाथ द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित 'कृष्णकांत स्मृति-ग्रंथ' का विमोचन किया गया। यह कार्य-क्रम दिन के साढ़े दस बजे से साढ़े बारह बजे तक चला। दो बजे से चार बजे तक मेरी रचनाओं तथा संस्मरणों

प्रदर्शनी आयोजित की गयी। संध्या पांच बजे से सात बजे तक एक आम सभा हुई, जिसमें कृष्णकांत स्मारक तथा दैनिक समाचार के द्वारा कृष्णकांत पुरस्कार की घोषणा की गई। ये सारे समारोह रवीन्द्र नाट्यशाला में सम्पन्न हुए।"

"पहले आयोजन में क्या-क्या हुआ ?"—मनोहर ने उत्सुकता से पूछा।

"यह आयोजन डॉ० सोमनाथ का था, यह तो मैं पहले ही तुम्हें बता चुका हूं। पर, क्या तुम उस दिन यहा नही थे ?"—कृष्णकांतजी की ध्वनि थी।

"आपको तो पता ही है कि मेरा अपना घर देहात में है। परिवार के प्रायः सभी लोग वहीं रहते हैं। यही कारण है कि बीच में यदि एक-दो दिनों की भी मुझे छुट्टी मिलती है, तो मैं घर चला जाता हूं। इस बार मैं यहां इसलिए रह गया, क्योंकि मुझे इस वर्ष के अंत तक अपना शोधकार्य पूरा कर लेना है।"—मनोहर ने बताया।

"हां, हां, तुमने ठीक ही कहा कि तुम्हारा घर तो देहात में है। मैं यह बात भूल ही गया था। तो सुनो कि डॉ० सोमनाथ के आयोजन में क्या-क्या हुआ।"

"जी।"

"रवीन्द्र नाट्यशाला की एक-एक सीट भरी हुई थी। कुछ लोग तो पीछे की तरफ खड़े भी थे। दिन के ठीक साढ़े दस बजे राज्यपाल महोदय का आगमन हुआ। उनके स्वागत में पांच कुमारियों ने स्वागत-गान प्रस्तुत किया। इसके बाद डॉ० सोमनाथ ने अपना भाषण दिया, जो इस प्रकार है: —अध्यक्ष महोदय, महामहिम राज्यपाल महोदय, उपस्थित देवियो और सज्जनो, आज तेरह फरवरी का दिन है। पिछले वर्ष इसी तारीख को हमने अपने एक महान् साहित्यकार को खो दिया था, जिनका नाम है—कृष्णकांतजी। आज से इकसठ वर्ष पूर्व इसी तेरह फरवरी को इस धरती ने एक प्रतिभा को अवतरित होते हुए देखा था। ऐसा संयोग विरल होता है कि जिस तारीख को कोई जन्म ले, उसी तारीख को उसकी मृत्यु भी हो जाय। अपने कृष्णकांतजी के साथ ऐसा ही हुआ। वह तेरह फरवरी को उत्पन्न हुए थे और तेरह फरवरी को ही उनका निधन भी हो गया। इस प्रकार तेरह फरवरी को उनकी जन्म-तिथि भी पड़ती है और पुण्य-तिथि भी। हमारे देश में पुण्य-तिथि मनाने की परम्परा नहीं है। हम जन्म-तिथि को अधिक महत्त्व देते हैं। इस तरह आज हम लोग इस नाट्यशाला में कृष्णकांतजी की इकसठवीं वर्षगांठ मनाने के लिए एकत्र हुए हैं—उनकी पुण्यतिथि मनाने के लिए नहीं।

हॉल के पीछे बैठे कुछ लोगों ने तालियां पीटनी शुरू कर दी। नतीजा यह हुआ कि आगे बैठे लोग मुड-मुडकर पीछे की ओर देखने लग गए। लोगों ने देखा कि एक बकरी हॉल में घुस आई थी और उसे भगाने के लिए प्रायः सभी दुर्र-दुर्र बोलने लगे थे। शोर सुनकर बकरी इधर-उधर दौड रही थी। कुछ देर के बाद बकरी बाहर निकलने में सफल हो गयी।

अब लोग शांत हो गए।

डॉ० सोमनाथ का भाषण चालू हो गया—मैं यह बताने की आवश्यकता नहीं समझता कि कृष्णकांतजी कौन थे? आज हिंदी-संसार उनके परिचय का मुहताज नहीं है। मैं नहीं समझता कि इस प्रथाल में कोई ऐसा अभागा भी हो सकता है, जो कृष्णकांतजी के बारे में कुछ नहीं जानता। ऐसा होना संभव नहीं। कृष्णकांतजी इसी शहर के थे। उनका जन्म यहीं हुआ था और वह यहां की माटी में ही समाहित हो गए। उन्होंने निरन्तर साठ वर्षों तक हिंदी साहित्य की अमूल्य सेवा की।

पीछे से किसी ने टिप्पणी की—कृष्णकांतजी पैदा होते ही लिखने लग गए थे, क्या?

डॉ० सोमनाथ ने तुरत अपने को सुधारा और कहा—यह सच है कि कोई पैदा होते ही नहीं लिखना शुरू कर देता है। मैं तो यह कह रहा था कि उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन लिखने में लगा दिया। यदि कुछ लोग ऐसा भी नहीं कहना चाहें तो यह अवश्य कहा जा सकता है कि कृष्णकांतजी ने लगातार चालीस वर्षों तक हिंदी की सेवा की; क्योंकि उनकी पहली कहानी तब छपी थी, जब उनकी उम्र बीस वर्ष की थी।

—अब डॉक्टर साहब रास्ते पर आ गये।—पीछे से फिर आवाज आई।

यह सुनकर लोग हँसने लग गए।

विश्वविद्यालय के कुलपति सभा की अध्यक्षता कर रहे थे। उन्होंने इशारे से लोगों को शांत रहने के लिए कहा।

श्रोता शांत होने लग गए।

डॉ० सोमनाथ ने अपना वक्तव्य पुनः चालू किया—मेरी दृष्टि से आज का दिन इस नगर के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि आज के ही दिन इस नगर ने कृष्णकांतजी को पाया था। आज वह हमारे बीच नहीं हैं, पर वह हमारे बीच ही हैं—अपनी कृतियों के रूप में। उन्होंने अपनी कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, विचारों तथा पैने व्यंग्य से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। वह 'नीति' जैसी पत्रिका के सम्पादक थे। 'नीति' कितनी प्रतिष्ठित पत्रिका है—यह बताने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। तो, जिस

व्यक्ति ने हिन्दी भाषा और साहित्य की इतनी अमूल्य सेवा की है, उनकी ही स्मृति मे एक स्मृति-ग्रंथ का प्रकाशन किया गया है, जिसका नाम है—कृष्णकांत स्मृति-ग्रंथ। आज उसी स्मृति-ग्रंथ का विमोचन हमारे राज्य के महामहिम राज्यपाल महोदय करेंगे। जयहिन्द।

यह बोलकर डॉ० सोमनाथ अपनी जगह पर बैठ गये।

संचालक ने घोषणा की—अब डॉ० उदयप्रकाश स्मृति-ग्रंथ के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करेंगे।

डॉ० उदयप्रकाश हड़बड़ाकर अपनी कुर्सी से उठे। उनकी कुर्सी पता नही कैसे तो उलट गई और उनकी धोती कुर्सी की एक टाग मे फँस गई। वह गिरते-गिरते बचे। लोगो को हँसने का एक बढ़िया मसाला मिल गया।

डॉ० उदयप्रकाश ने बड़ी कठिनाई से अपने को संयत किया। किसी प्रकार उन्होंने अपना भाषण प्रारम्भ किया- परमादरणीय महोदय, महामहिम राज्यपाल महोदय, उपस्थित देवियो और सज्जनो, आज कृष्णकात स्मृति-ग्रंथ का विमोचन होने जा रहा है। मैं इसी ग्रंथ के सम्बध मे आपको कुछ बताना चाहता हूं। मेरे जानते हिन्दी मे अपने ढग का यह पहला ग्रंथ है, जो किसी लेखक की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्मृति मे प्रकाशित किया गया है और एक वर्ष की अल्पावधि मे ही। इस ग्रंथ मे कृष्णकातजी की प्रामाणिक जीवनी है। इस ग्रंथ मे उनसे सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण सस्मरण हैं। इस ग्रंथ मे कृष्णकांतजी की रचनाओ का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ मे कृष्णकातजी से सम्बन्धित अनेक दुर्लभ चित्र भी हैं। इस प्रकार तीन सौ पृष्ठों के इस स्मृति-ग्रंथ को कृष्णकात विश्वकोश भी कहा जा सकता है। ऐसा इसलिए मैंने कहा है; क्योंकि इसमें कृष्णकातजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सपूर्ण लेखा-जोखा उपलब्ध है। इस ग्रंथ के सम्पादक हैं हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि, कहानीकार, आलोचक, नाटककार, अनेक ग्रंथों के प्रणेता एवं प्रात स्मरणीय विद्वान् डॉ० सोमनाथ। आप लोगों को पता ही है कि डॉक्टर साहब हमारे विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। कुछ लोगों को यह भ्रम है कि डॉक्टर साहब कृष्णकातजी के विरोधी रहे हैं। पर वास्तविकता कुछ और है। डॉक्टर साहब के मन में कृष्णकातजी के लिए कितना आदर है, यह तो इसी से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने स्वयं 'कृष्णकात स्मृति-ग्रंथ' का बडी लगन के साथ सम्पादन किया है। हां, एक बात डॉक्टर साहब अवश्य कहते हैं कि सच्चा आलोचक कृति का मूल्यांकन करता है, व्यक्ति का नही। हो सकता है कि व्यक्तिगत तौर पर कृष्णकातजी के साथ डॉक्टर साहब का कोई मतभेद रहा हो, पर डॉक्टर साहब ने उस मतभेद को कृष्णकातजी की रचनाओ के मूल्यांकन के

समय बिलकुल अलग छोड़ दिया है। इसी विशेषता के कारण डॉक्टर साहब हिन्दी के आज चोटी के आलोचक माने जाते हैं।

पीछे से किसी ने जरा तेज आवाज में फब्ती कसी—किए जाओ चमचई, इस बार रीडरी तुम्हें ही देंगे डॉक्टर सोमनाथ।

इस पर हॉल में काफी देर तक हँसी गूँजती रही। डॉ० उदयप्रकाश के ऊपर इसका प्रतिकूल असर पड़ा। वह क्रोध में आ गए और तुरत अपनी जगह पर जाकर बैठ गए। इसके कारण लोग और भी हँसने लगे।

संचालक माइक के सामने आ गए। वह कुछ बोलना चाह रहे थे, पर लोग थे कि वे हँसते ही जा रहे थे। कुछ देर के बाद लोगों का हँसना बंद हो गया। सचालक ने कहा—अब मैं महामहिम राज्यपाल महोदय से यह [illegible] 'कृष्णकांत स्मृति-ग्रंथ' का विमोचन करने की कृपा [illegible] कर खड़े हो गए। थाली में 'कृष्णकांत स्मृति-ग्रंथ' की एक प्रति सुनहरे कागज में लिपटी पड़ी थी। ऊपर लाल रंग का फीता बंधा हुआ था। राज्यपाल महोदय खड़े हो गए। उन्होंने थाली में रखी कैंची उठा ली। कैंची से लाल फीते को काटा और फिर अपने हाथ से स्मृति-ग्रंथ के ऊपर लिपटे हुए कागज को खोलकर थाली पर रख दिया। वह स्मृति-ग्रंथ को बड़े ध्यान से देखने लग गये।

हॉल में एक अनुरोध गूँज गया—जरा हमे भी दिखाइये।

मुस्कराते हुए राज्यपाल ने स्मृति-ग्रंथ का रुख दर्शकों की ओर कर दिया।

कुछ क्षणों के बाद राज्यपाल महोदय का भाषण प्रारम्भ हो गया—सभापतिजी, डॉ० सोमनाथजी, सभा में उपस्थित महानुभावो और देवियो, इस विमोचन-समारोह में सम्मिलित होकर आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। राज्यपाल होने के कारण मुझे तरह-तरह के समारोहों में जाना ही पड़ता है और उद्घाटन भी करना ही पड़ता है। कभी-कभी मुझे लगता है कि हम लोगों को राज्यपाल न कहकर उद्घाटक ही कहा जाय तो ज्यादा अच्छा हो।

यह सुनते ही लोगों ने जमकर तालियां पीटनी शुरू कर दी।

"मगर, आज आप विद्वानों और साहित्य-प्रेमियों के बीच आकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। ऐसे आयोजनों में शामिल होकर मैं अपने को खुशनसीब मानता हूँ। डॉ० सोमनाथ ने जिस ग्रंथ का सम्पादन किया है···

इसी बीच पूरे हॉल में एक आवाज तैर गयी—सारा काम डॉ० उदयप्रकाश ने किया है, डॉ० सोमनाथ ने कुछ भी नहीं किया है।

राज्यपाल महोदय का भाषण जारी था—उसे देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने इसके लिए कितना परिश्रम किया होगा। इस ग्रंथ का सम्पादन कर डॉ० सोमनाथ ने यह प्रमाणित कर दिया है कि वे कृष्णकांत-जी के अभिन्न नहीं बल्कि सबसे बड़े प्रशंसक हैं।

इस पर केवल उदयप्रकाश ने ताली बजायी। उसे आशा थी कि उसके ताली बजाने से अन्य लोग भी तालियां बजाएंगे पर ऐसा नहीं हो सका।

—अगर कृष्णकांतजी इस शहर की शोभा थे, तो डॉ० सोमनाथ भी इस शहर की एक हस्ती है। मैं इनकी प्रतिभा एवं लगन का प्रशंसक हूं और आशा करता हूं कि भविष्य में भी वह अपनी प्रतिभा का लाभ हिंदी तथा देश की अन्य भाषाओं को पहुंचाते रहेंगे। जय हिन्द।

भाषण के समाप्त होते ही पीछे से एक तेज आवाज आई—डॉ० सोमनाथ का कुलपति बनने का रास्ता खुल गया।

इस फब्ती को सुनकर लोग हँस पड़े। स्वयं राज्यपाल को भी हंसी आ गई।

इसके बाद कुलपति का भाषण हुआ। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हो गई।

मनोहर, इस विमोचन-समारोह की एक बड़ी विशेषता थी।"—कृष्णकांतजी का स्वर था।

"क्या ?"—मनोहर ने चौंकते हुए पूछा।

"इस समारोह में मैं तो इसलिए नहीं था, क्योंकि मैं मर चुका था। मगर, इस समारोह में मेरी पत्नी कमला भी नहीं थी। इसमें संगीता नहीं थी, विनीता नहीं थी, अमर नहीं था और अरुण भी नहीं था।"

"ऐसा क्यों ?"—मनोहर का प्रश्न था।

"क्योंकि डॉ० सोमनाथ ने मेरे परिवार के किसी भी सदस्य को इस आयोजन में आमंत्रित नहीं किया था।"—कृष्णकांतजी की दर्द भरी आवाज उभरी और लगा कि वह सिसक रहे हैं।

कुछ देर तक मनोहर को कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ी। उसने थोड़ी प्रतीक्षा करने के बाद आवाज दी—"कृष्णकांतजी, आप चुप क्यों हो गए ?"

"बोलता हू, मनोहर। कभी-कभी मेरी आत्मा इतनी अधिक दु:खी हो जाती है कि कुछ भी बोल पाना असंभव सा हो जाता है। अभी मुझे कुछ ऐसी ही अनुभूति हो रही थी। तुम्हारा टेप रेकार्डर ठीक काम कर रहा है न ?"

"जी, यह तो बिलकुल ठीक काम कर रहा है।"—मनोहर ने टेप रेकार्डर की जांच करते हुए कहा।

"ठीक है, अब मैं तुम्हें दूसरे कार्य-क्रम के बारे मे बतलाने जा रहा हूं।"

"बोलिए, मैं बडे ध्यान से सुन रहा हू।"

"दूसरा कार्य-क्रम प्रदर्शनी का था। रवीन्द्र नाट्यशाला के बाहर हॉलनुमा जो बडा-सा बरामदा है, उसी मे मेरी रचनाओं की प्रदर्शनी लगाई गई। मेरी प्रकाशित पुस्तकें, कुछ हस्तलिखित पाण्डुलिपियां, पुरानी पत्रिकाओ के कुछ अक जिनमें मेरी रचनाएँ प्रकाशित थी, महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के द्वारा लिखे गये मेरे नाम पत्र, मेरा टाइपराइटर, मेरी कलम आदि प्रदर्शित थे। बरामदे की दूसरी तरफ सांवारिया ने मेरी शव-यात्रा से सम्बन्धित चित्रों की प्रदर्शनी लगाई थी। इसे लोगो ने बहुत पसन्द किया। पौने चार बजे तक सांवारिया ने मेरी शव-यात्रा की फिल्म भी प्रदर्शित की। फिल्म नाट्यशाला मे दिखाई गई थी। नाट्यशाला खचाखच भरी हुई थी। इस आयोजन को लेकर सावरिया की खूब प्रशंसा हो रही थी।"

"अच्छा!"—मनोहर ने विस्मय प्रकट किया।

"उस दिन सांवरिया बहुत खुश था। उसे भीतर-ही-भीतर लग रहा था कि वह कोई महान् फोटोग्राफर है, जिसके चित्रों को सभी सराह रहे थे। वह बेवकूफ भूल गया था कि चित्रो की वहां इसलिए महत्ता आकी जा रही थी; क्योंकि उन चित्रो का सम्बन्ध अपने युग के एक चर्चित साहित्यकार से था। उस दिन उसका हाल बेगानी शादी मे अब्दुल्ला दीवाना वाला हुआ जा रहा था।"

"यह आपने ठीक कहा।"

"इसके बाद पांच बजे रवीन्द्र नाट्यशाला मे ही एक सार्वजनिक सभा हुई। इसमे सभी प्रकार के लोगों ने भाग लिया। इस सभा की अध्यक्षता डॉ० सोमनाथ कर रहे थे। सभा का संचालन डॉ० मीनाक्षी ने किया। तुमने डॉ० मीनाक्षी का नाम तो सुना ही होगा?"

"जी। मैं डॉ० मीनाक्षी को जानता हूं। ये महिला शिक्षा सदन मे हिंदी की व्याख्याता हैं। इन दिनो इनकी काफी कहानियां छप रही हैं।"—मनोहर ने बताया।

"सभा का समारंभ करते हुए डॉ० मीनाक्षी ने आगत देवियों तथा सज्जनों का पहले स्वागत किया। इसके बाद उसने आज के आयोजन के उद्देश्य पर प्रकाश डाला। तब उसने कहा—अब मैं मुरली मनोहरजी से अनुरोध करती हूं कि वह आपके समक्ष आकर प्रस्तावित कृष्णकांत स्मारक की प्रगति के सम्बन्ध में लोगो को जानकारी देने की कृपा करें।

श्रोताओं ने तालियां बजाकर मुरली मनोहर का स्वागत किया।

माइक के सामने आकर उन्होंने कहा—उपस्थित सज्जनो तथा देवियो, आज से ठीक एक साल पहले कृष्णकांतजी हमसे बिछुड़ गये। इस एक साल के दौरान इस शहर में और भी कितने लोग मर गए, जिनकी हमारे पास कोई गिनती नहीं है। मगर, यह शहर हर मरनेवाले आदमी की मौत से दुःखी नहीं है, बल्कि उसने सबको भुला दिया है। पर यह शहर अपने प्यारे लेखक कृष्णकांतजी को नहीं भूल सका है। यदि आपने इतिहास पढ़ा हो तो आपको मालूम होगा कि इस दुनिया से बड़े-बड़े सम्राटों और तानाशाहों के नाम भी मिट जाते हैं लेकिन साहित्यकारों के नाम नहीं मिटते।

श्रोताओं ने तालियां बजा कर मुरली मनोहर के इस वाक्य को पसन्द किया।

—यही कारण है कि आज नेपोलियन, सिकन्दर, अकबर या रावण का नाम कोई नहीं लेता जबकि इनके पास अपने जमाने क्या कुछ नहीं था। इनके इशारे पर हवाएं बहती थीं और इनके संकेत पर नदियों का रुख पलट जाया करता था। मगर, ऐसे-ऐसे महाबलियों को भी काल ने नहीं छोड़ा। यह कितने आश्चर्य की बात है कि गोस्वामी तुलसीदास जो अन्न के दाने के लिए भी ललाते थे, आज दुनिया उन्हें याद करती है। जैसे-जैसे वक्त गुजरता जाता है, सम्राटों एवं तानाशाहों के इतिहास पर धूल की परत चढ़ती जाती है और महान् कवियों एवं साहित्यकारों का महत्त्व बढ़ता ही जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि यह दुनिया सर्वोच्च सम्मान साहित्यकारों को देती है। बस, यही कारण है कि हम अपने प्यारे साहित्यकार कृष्णकांत जी को नहीं भूल सके हैं और न कभी भूलेंगे।

श्रोताओं की तालियों से हॉल गूंज उठा।

—इस शहर ने कृष्णकांतजी को नहीं भुलाया है। यहां के नागरिकों ने अपने कृष्णकांत को विस्मृत नहीं किया है और आज मैं इस मंच से आप लोगों को यह बताना चाहता हूं कि भविष्य में भी कृष्णकांतजी कभी भी भुलाए नहीं जाएंगे, बल्कि वह अमर रहेंगे।

श्रोता पुन: तालियां पीटने लग गए।

—कृष्णकांतजी अमर रहें, इसके लिए एक समिति बना ली गयी है, जिसका नाम है—कृष्णकांत स्मारक समिति। अभी इस समिति के सदस्य हैं—श्री बजरंग पोद्दार, आप इस नगर के प्रसिद्ध समाज-सेवी हैं। दूसरे सदस्य हैं—श्री जयगोविन्द वर्मा, आई० ए० एस०। आप लोग इन्हें अच्छी तरह जानते हैं। ये इस राज्य के मुख्य सचिव रह चुके हैं। तीसरे सदस्य हैं—इस नगर के कर्मठ विधायक गोपालजी। चौथे सदस्य हैं—श्री ज्ञानप्रकाश चोपड़ा, आप प्रसिद्ध समाज-सेवी एवं होटल-व्यवसायी हैं। पांचवें

सदस्य हैं—इस नगर के मशहूर शल्य चिकित्सक डॉ० श्यामजी। छठी सदस्या हैं—श्रीमती स्मृति देवी। इनका परिचय देना बेकार है; क्योंकि नगर का बच्चा-बच्चा इनके नाम से परिचित है और सातवां सदस्य आप लोगों का यह सेवक है, जिसे लोग मुरली मनोहर कहते हैं।

हॉल की पिछली सीटों की तरफ से एक तेज आवाज सुनाई पड़ी—होशियार, सब साले चोर हैं।

यह सुनकर मुरली मनोहर ने पीछे की तरफ जलती हुई आंखों से देखा और अपना भाषण जारी रखा—यह समिति इस नगर में कृष्णकांतजी की स्मृति में एक भव्य स्मारक बनाने जा रही है। यह स्मारक शहर के बीचोंबीच बनाया जाएगा। इसमें एक पुस्तकालय, एक संग्रहालय, एक नाट्यशाला, एक शोध-संस्थान, साहित्यकारों के लिए अतिथिशाला, प्रेस आदि बनाने का प्रावधान है। परिसर के चारों तरफ दूकानें होंगी और इस बाजार का नाम होगा कृष्णकांत चतुर्भुज। इन दूकानों से जो किराया प्राप्त होगा, उसी राशि से इस स्मारक का संचालन किया जाएगा। स्मारक के बीचोंबीच कृष्णकांतजी की एक आदमकद कांस्य प्रतिमा स्थापित की जाएगी।"

"योजना तो बड़ी महत्त्वाकांक्षी है।"—मनोहर से न रहा गया, अतः वह इस बीच में ही बोल पड़ा।

"हां, मनोहर। तुमने ठीक ही कहा कि योजना तो बहुत ही महत्त्वाकांक्षी है। पर, यह सब सुनते हुए मेरी आत्मा छटपटा रही थी। मेरी इच्छा हो रही थी कि मैं हॉल के बीचोबीच जाकर खड़ा हो जाऊं और चीख-चीख कर बोलना शुरू कर दूं—सावधान, सावधान, मेरे नगर के भोले वासियो, अभी-अभी आपके सामने जो सात नाम सुनाए गए हैं, वे कौन लोग हैं, आप खूब अच्छी तरह जानते हैं। ये लोग रुपए के भेड़िये हैं, भूखे भेड़िए। इनकी भूख केवल रुपए से मिटती है। आप इन सालों के बहकावे में मत आएं। ये लोग कृष्णकांत का स्मारक नहीं बनाने जा रहे हैं, ये लोग तो अपने को बनाने जा रहे हैं। ये लोग बड़ी चालाकी से शहर के बीच की वह जमीन हथिया लेना चाहते हैं—मेरे नाम पर—मेरे नाम के सहारे—मेरे स्मारक के बहाने, जो जमीन लाखों रुपए की है। इन सातों में से कोई भी साहित्य-प्रेमी नहीं है। ये सभी धन-लोलुप और समाज के शत्रु हैं।—मगर, मेरी विवशता यह थी कि मैं पुनः शरीरधारी नहीं बन सकता था। इसी लाचारी के कारण मेरी आत्मा उस दिन भीतर-ही-भीतर घुटक कर रह गयी।"

"इसके बाद क्या हुआ?"—मनोहर ने पूछा।

"इसके बाद दैनिक समाचार के प्रबंध निदेशक श्री प्रकाशचंद का आगमन हुआ। उन्होंने मंच से अपना भाषण देते हुए कहा—अध्यक्ष महोदय, उपस्थित सज्जनो और देवियो, अभी-अभी आपने सुना और सुनकर यह अनुमान भी लगा लिया होगा कि कृष्णकांतजी का देश में कितना सम्मान है। श्री मुरली मनोहरजी ने कृष्णकांतजी की स्मृति में जो स्मारक बनाने की भव्य योजना बनाई है, वह काफी मोहक है। पर, क्यों तो मैं ऐसा सोचा करता हूं कि आदमी को उतना ही सोचना चाहिए जितना वह आसानी से पूरा कर सके। यदि स्मारक की योजना पूरी हो सके, तो इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है? लेकिन, क्यों तो जब मैं किसी बड़ी योजना की चर्चा सुनता हू, तो उसी समय से मुझे आशका सताने लगती है। आज यह हमारा राष्ट्रीय चरित्र बन गया है कि जब एक भारतीय मंच पर आता है, तो वह खूब डींगें हांकता है। मगर, मंच से उतरते ही वह सब कुछ भूल जाता है। यही कारण है कि मैं इस सिद्धांत को मानता हूं कि उतना ही बोलो जितना कर सको।"

"प्रकाशचंदजी ने बिलकुल सही बात कही है।"—मनोहर ने अपनी राय जाहिर की।

"प्रकाशचंदजी ने आगे अपने भाषण में कहा—दैनिक समाचार के साथ कृष्णकांतजी के बड़े भावात्मक संबंध रहे हैं। इस नगर के लोगों को यह अच्छी तरह स्मरण होगा कि दैनिक समाचार के पहले अंक का विमोचन कृष्णकांतजी ने ही किया था। आज यह दैनिक चल निकला है और हमारे बीच कृष्णकांतजी नहीं हैं। मैं यह मानता हू कि कृष्णकांतजी के कर-कमलों का ही शायद यह प्रताप है कि यह दैनिक देखते-ही-देखते इस राज्य का एक प्रमुख दैनिक बन गया है। अतः मैं दैनिक समाचार के प्रबंध निदेशक की हैसियत से आज यह घोषणा करता हू कि दैनिक समाचार की ओर से प्रति वर्ष इस क्षेत्र के एक लेखक को पंद्रह सौ रुपयों का पुरस्कार प्रदान किया जाएगा और इस पुरस्कार का नाम होगा—कृष्णकांत पुरस्कार।

इस घोषणा को सुनते ही लगभग एक मिनट तक लोग रह-रह कर तालियां बजाते ही रह गए।

श्री प्रकाशचंद ने फिर कहा—बस, मैं इससे अधिक और कुछ भी नहीं कहना चाहता। आप लोग मिलकर यह आशीर्वाद दें कि दैनिक समाचार अपने इस वचन का निर्वाह कर सके।

अंत में डॉ० सोमनाथ का अध्यक्षीय भाषण हुआ। अपने पूरे भाषण में उन्होंने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि वह मेरे सच्चे प्रेमी रहे हैं। वह मुझसे अधिक अपनी प्रशंसा पर ध्यान दे रहे थे।"

"इसे ही कहते हैं, चोर की दाढ़ी मे तिनका !"—मनोहर ने कुपित होते हुए टिप्पणी की।

"तुमने खुद कहा !"—कृष्णकातजी की खिलखिलाहट सुनाई पड़ी।

"तो डॉ० सोमनाथ के बारे मे और क्या कहूं ?"—मनोहर अभी भी ताव मे था।

"मनोहर, तेरह फरवरी को लगा कि मैं मरा नही हू। मैं लोगो के हृदय और मस्तिष्क मे आज भी जीवित हू। उस दिन मैं बड़ा खुश था। मेरी आत्मा सतुष्ट थी, लेकिन···"

"लेकिन क्या ?"—मनोहर ने टोका।

"लेकिन तो है ही···इस लेकिन के बारे मे फिर कभी बोलूगा।"

पीपल की पत्तियो मे एक हलचल हुई और मनोहर को ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई उन पत्तियो मे ही समा गया।

पंद्रह

"मनोहर, तुम तो जानते हो कि मध्य प्रदेश की सरकार ने साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र मे अनेक ऐसे काम किए है, जिनकी बड़ी चर्चा है। यह भी सच है कि इस विभाग की आलोचनाए भी कम नही हुई है। मगर, वहा कुछ ठोस कार्य भी हुए हैं, इससे कोई इकार नही कर सकता। कभी तुम मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल जाओ तो वहां का भारत भवन अवश्य देखना। भारत भवन देखकर तुम्हे यह पता चल जाएगा कि वहां का शासन अपने साहित्यकारो का सम्मान भी करना जानता है और साहित्य तथा संस्कृति के उन्नयन मे उसकी रुचि भी है। प्रतिवर्ष मध्य प्रदेश शासन साहित्यकारो तथा कलाकारो को सम्मानित और पुरस्कृत करता है। पर, देश के अन्य राज्यो मे साहित्यकारों तथा कलाकारो के लिए ऐसी कोई विशेष योजना नजर नही आती।"

"जी, आपने यह ठीक ही कहा है। अपना राज्य तो इस दृष्टि से पूरी तरह शून्य है।"—मनोहर की उक्ति थी।

"मेरी मृत्यु के लगभग तेरह-चौदह महीनो के बाद मेरे राज्य के मुख्य-मत्री को काग्रेस आला कमान ने बदल दिया। एक नए मुख्य मंत्री का आगमन हुआ। वह पहले केंद्रीय मत्रिमडल मे थे। यहां आकर इन्होंने नए ढंग से काम करने का आश्वासन जनता को दिया। इनके द्वारा सचिवालय

के उच्च अधिकारियों को भी इधर-उधर किया गया। शिक्षा आयुक्त एक

माथुर—नमस्कार, सर।

मुख्य मंत्री—नमस्कार।

मुख्य मंत्री—माथुर साहब, आपको नया विभाग कैसा लग रहा है?

माथुर—सर, यह तो मेरी रुचि का विभाग है। यहां काम करके मुझे प्रसन्नता ही प्राप्त होगी। यों भी लोक-निर्माण विभाग में रहना मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था।

मुख्य मंत्री—मैं आपकी रुचि जानता था, इसीलिए मुख्य मंत्री बनते ही मैंने आपको शिक्षा एवं संस्कृति विभाग सौंप दिया।

माथुर—इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ, सर।

मुख्य मंत्री—माथुर साहब, जब मैं दिल्ली में था, इस राज्य को लेकर मैं बड़ा चिंतित रहा करता था। यहां इतने बड़े-बड़े विश्वविद्यालय एवं शिक्षा-संस्थान हैं, पर इनकी व्यवस्था बेहद खराब है। परीक्षाएं कभी भी समय पर नहीं होतीं। शिक्षक पढ़ाते नहीं। छात्र पढ़कर परीक्षा देने को तैयार नहीं। उन्हें नकल करने की छूट चाहिए। इस प्रकार से परीक्षा में चोरी करना यहां के छात्रों ने अपना जन्मसिद्ध अधिकार मान लिया है। खैर, यह एक अलग समस्या है। इस पर मैं आपसे फिर कभी बात करूंगा।

माथुर—जी।

मुख्य मंत्री—हमारा यह राज्य सांस्कृतिक दृष्टि से कितना संपन्न रहा है, यह बात सारे संसार को मालूम है। पर, ऐसा लगता है कि स्वतंत्रता के बाद सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से यह राज्य मरता जा रहा है। शायद इसका एक कारण यह है कि राज्य सरकार ने इस दिशा में कोई ध्यान कभी दिया ही नहीं।

माथुर—यही बात है, सर।

मुख्य मंत्री—माथुर साहब, आप जानते ही हैं कि मध्य प्रदेश का शासन साहित्य तथा संस्कृति के क्षेत्र में कितना और कैसा काम कर रहा है। मेरी भी यही इच्छा है कि यहां भी कुछ मध्य प्रदेश जैसा हो।

माथुर—मैं आपकी चिंता समझ रहा हूं, सर। यह सच है कि यह राज्य साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से बंजर-सा हो गया है।

मुख्य मंत्री—बंजर तो खैर अभी नहीं हुआ है। आज भी इस राज्य में

एक-से-एक लेखक और कलाकार हैं, जिनकी बड़ी ख्याति है। पर, जब मैं यह सुनता हूं कि यहां के साहित्यकारों और कलाकारों का बाहर सम्मान किया जा रहा है, तो मुझे खुशी तो होती है, पर कष्ट भी होता है। मुझे लगता है कि यह हमारे राज्य के लिए शर्म की बात है कि यहां की सरकार यहां की प्रतिभाओं का सम्मान नहीं करती। ऐसी स्थिति में इन साहित्यकारों तथा कलाकारों के मन में क्षोभ होना स्वाभाविक है।

माथुर—सर, आज पहली बार इस राज्य में मैं किसी मुख्य मंत्री के मुख से ऐसी बातें सुन रहा हूं। आज के पहले इस विषय पर विचार करने की फुर्सत किसके पास थी? लोग इस पर बातें करना अपने समय को नष्ट करना मानते थे।

मुख्य मंत्री—यही तो दुःख की बात थी। खैर, जो हुआ सो हुआ। अब मैं चाहता हूं कि यहां कुछ हो।

माथुर—अवश्य होना चाहिए, सर।

मुख्य मंत्री—माथुर साहब, एक काम कीजिए आप।

माथुर—आदेश दें, सर।

मुख्य मंत्री—आप तीन दिनों के अंदर इस राज्य के उन प्रसिद्ध साहित्यकारों के नामों की एक सूची प्रस्तुत करें, जिनका निधन हो चुका है। मैं चाहता हूं कि इन साहित्यकारों के नाम पर मैं जीवित लेखकों को प्रतिवर्ष पुरस्कार देना प्रारंभ करूं। इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखिएगा कि किसी प्रसिद्ध साहित्यकार का नाम छूट न जाए। मेरी इच्छा है कि आगामी छब्बीस जनवरी को ये पुरस्कार बांट दिए जाएं। इस कार्य पर मैं हर साल पांच लाख तक खर्च करने को तैयार हूं।

माथुर—ठीक है, सर। मैं यह सूची आपको परसों ही दे दूंगा।

मुख्य मंत्री—ठीक है, आपसे यही कहना था।

माथुर—तो मैं चलता हूं, सर। नमस्कार।

मुख्य मंत्री—नमस्कार।

"इसके बाद क्या हुआ, कृष्णकांतजी?"—मनोहर ने व्यग्रता के साथ पूछा।

"माथुर साहब ने राज्य के दिवंगत साहित्यकारों की एक सूची मुख्य मंत्री को दे दी। उस सूची में एक नाम मेरा भी था।"

"यह तो हर्ष की बात है।"—मनोहर ने प्रसन्नता व्यक्त की।

"बात तो हर्ष की ही है, पर जरा इसके आगे की भी बात सुनो।"

"कहिए, कृष्णकांतजी, मैं बड़े ध्यान से आपकी बातें सुन रहा हूं।"—मनोहर ने अपनी ओर से कृष्णकांतजी को आश्वस्त किया।

"राजधानी में प्रत्येक मंगलवार को मंत्रिमंडल की बैठक होती है। लो, एक बैठक की कार्यवाही की जानकारी प्राप्त करो —

मुख्य मंत्री—साथियो, आज मैं आपके सामने एक बिलकुल नया प्रस्ताव रखने जा रहा हूं। अब तक राज्य सरकार ने जन-कल्याण के लिए मार्ग-निर्माण, विद्युतीकरण, भवन-निर्माण, शिक्षा-प्रसार आदि के अनेक महत्त्व-पूर्ण कार्य किए हैं। यह सच है कि इन सुविधाओं से जनता का जीवन-स्तर उन्नत हुआ है। लेकिन, इन चीजों से हमारी केवल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मानसिक तथा आध्यात्मिक भूख तभी मिटती है, जब हम साहित्य एवं कला का सहारा लेते हैं। दुर्भाग्यवश पिछली सरकारों ने साहित्य, कला एवं संस्कृति की तरफ लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया। हमने अपने साहित्यकारों तथा कलाकारों को बिलकुल भुला दिया। कहना चाहिए कि हमारी पिछली सरकारों के द्वारा उनकी घोर उपेक्षा की गई।

कुछ मंत्री अपना सिर हिला-हिला कर अपनी सहमति प्रकट कर रहे थे।

—कलाकारों एवं साहित्यकारों का निर्माण करना सरकार का काम नहीं है। दुनिया की कोई भी सरकार ऐसा कर भी नहीं सकती। मगर, प्रत्येक सरकार का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह भारतीय संस्कृति के विकास के लिए साहित्यकारों तथा कलाकारों को प्रोत्साहित तथा सम्मानित करे। यह हमारे देश की प्राचीन परंपरा भी रही है। इस देश के राजा, महाराजा और सम्राट् केवल लड़ाइयां ही नहीं लड़ते थे, बल्कि वे साहित्यकारों एवं कलाकारों का सचमुच सम्मान भी करते थे। ऐसा करके वे अपने को ही सम्मानित अनुभव करते थे।

—सच है, सच है।—कुछ लोगों ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

—हमारे राज्य में आज भी साहित्यकारों तथा कलाकारों का कोई अभाव नहीं है। यहां की सरकार उनका सम्मान नहीं करती। लेकिन बाहर इन साहित्यकारों एवं कलाकारों को सम्मान प्राप्त होता है। यह दुःखद स्थिति है कि हम अपने साहित्यकारों तथा कलाकारों का सम्मान तक करना नहीं जानते। यह बात मुझे बराबर सालती रही है, अतः मैं चाहता हूं कि यह स्थिति अब खत्म हो। जो हुआ सो हुआ। लेकिन अब हम अपने राज्य के साहित्यकारों तथा कलाकारों को उचित सम्मान अवश्य देंगे।

—अवश्य, अवश्य।—प्रायः सभी मंत्री एक साथ बोल पड़े।

—अभी आपके समक्ष शिक्षा मंत्री एक सूची प्रस्तुत करेंगे। सूची में इस राज्य के दिवंगत साहित्यकारों के नाम हैं। मैं इन साहित्यकारों के नाम पर पुरस्कारों की घोषणा करना चाहता [redacted]। ये पुरस्कार हर वर्ष गणतंत्र

दिवस के अवसर पर दिए जाएंगे। अगले वर्ष मैं कलाकारों के लिए भी पुरस्कार-योजना घोषित करूंगा।

मुख्य मंत्री ने शिक्षा मंत्री की ओर इशारा किया। शिक्षा मंत्री उठ खड़े हुए। वह दिवगत लेखकों के नाम पढ़ने लग गये। सारे नामों को पढ़कर सुना लेने के बाद शिक्षा मंत्री ने पूछा—किसी को कुछ कहना हो तो कहें।

सूचना मंत्री ने कहा—हां, मुझे कुछ कहना है। इस सूची में एक नाम ऐसा सम्मिलित है, जिसे इसमें शामिल नहीं किया जाना चाहिए था।

मुख्य मंत्री—कौन-सा नाम?

सूचना मंत्री—कृष्णकांतजी का नाम।

मुख्य मंत्री—क्यों, इस नाम पर आपको क्या आपत्ति है? कृष्णकांतजी का तो पूरे देश में सम्मान है। आपको शायद पता होगा कि इनकी एक कहानी पर फिल्म भी बनी थी, जिसे राष्ट्रपति ने स्वर्ण-कमल से पुरस्कृत किया था।

सूचना मंत्री—जी, मैं यह सब जानता हूं। पर, यह भी सच है कि कृष्णकांत एक ऐसे लेखक थे, जो हमारी पार्टी के विरुद्ध थे। वह जयप्रकाश के इंदिरा-विरोधी आंदोलन में शरीक थे। उन्होंने जयप्रकाश के जुलूसों में भाग लिया था। उन्होंने जयप्रकाश की एक सभा की अध्यक्षता भी की थी।

मुख्य मंत्री—यदि यह सब सच है तब तो कृष्णकांतजी के नाम पर हमें जरूर ही पुरस्कार देना चाहिए, क्योंकि किसी साहित्यकार का मूल्यांकन राजनीतिक आधार पर नहीं किया जा सकता। हमें तो यह देखना है कि कृष्णकांतजी ने हमें कैसा साहित्य दिया है।

सूचना मंत्री—कृष्णकांतजी ने हमें इंदिरा-विरोधी साहित्य दिया है।

मुख्य मंत्री—सूचना मंत्रीजी की बातें सुनकर मुझे एक घटना याद आ रही है। सुनिए। कुंभनदास ब्रजभाषा के एक बड़े कवि हो गये हैं। ये अकबर के समकालीन थे। एक बार अकबर के दरबार में किसी गायक ने कुंभन- [illegible]

गयी पालकी पर चढ़ना अस्वीकार कर दिया। वह बेमन से पैदल चलकर फतहपुर सीकरी आये। कुंभनदास को देखकर अकबर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कुंभनदास से एक पद सुनाने के लिए कहा। अकबर चाहते थे कि कुंभनदास उनकी प्रशंसा में कोई रचना सुनाए। कुंभनदास ने निर्भय होकर यह पद सुनाया—

संतन को कहा सीकरी सो काम।
आवत जात पहनियां टूटी, बिसरि गये हरिनाम।
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम।
'कुंभनदास' लाल गिरधर बिनु और सबै बे काम।।

यह पद सुनकर भी अकबर कुंभनदास से नाराज नहीं हुए। यदि वह चाहते तो अपने अपमान का बदला लेने के लिए कुंभनदास को सजाये मौत भी दे सकते थे। पर, अकबर ने ऐसा नहीं किया। आज अकबर भी नहीं हैं और कुंभनदास भी नहीं हैं। लेकिन, आज अकबर से कहीं ज्यादा कुंभनदास का महत्त्व है।

सूचना मंत्री—मुख्य मंत्रीजी, आप कहना क्या चाहते है ?

मुख्य मंत्री—मैं केवल यह स्पष्ट करना चाह रहा था कि हमारे मन में साहित्यकारों तथा कलाकारों के लिए बदले की भावना नहीं होनी चाहिए। हो सकता है कि ऐसा समय आए जब लोग हम लोगों को पूरी तरह भूल जाएं और केवल कृष्णकांतजी को ही याद रखें।

विधि मंत्री—कृष्णकांतजी के नाम पर विरोध का एक कारण और है।

मुख्य मंत्री—क्या ?

सूचना मंत्री—कृष्णकांतजी जातीयता करते थे।

मुख्य मंत्री—वह कैसे ?

जेल मंत्री—एक कारण और है। श्रीमती गांधी जनता पार्टी के पतन के बाद जब दुबारा प्रधान मंत्री के रूप में यहां आयी थीं तो कृष्णकांतजी ने मैडम के लिए मान-पत्र लिखने से इंकार कर दिया था। ऐसे लेखक के नाम पर हमें कोई पुरस्कार नहीं देना चाहिए।

मुख्यमंत्री—एक सच्चे साहित्यकार से आप और क्या आशा कर सकते हैं ?

सूचना मंत्री—मुख्य मंत्रीजी, अब मैं आपके सामने वह सबसे बड़ा कारण बताने जा रहा हूं कि क्यों कृष्णकांतजी के नाम पर पुरस्कार नहीं दिया जाना चाहिए।

मुख्य मंत्री—बताइए।

सूचना मंत्री—आप अच्छी तरह जानते हैं कि आप यहां अभी-अभी आए हैं और आप माताजी की कृपा से आए हैं। आपके ऊपर संजय गांधी

की कृपा है, इसलिए आपको यहा सजय-कोटा से भेजा गया है। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि आपने कृष्णकातजी के नाम पर पुरस्कार की घोषणा कर दी। यह सच है कि इसके लिए लोग आपकी खूब वाह-वाही करेंगे। मगर, इसका एक दूसरा पहलू भी है। भूतपूर्व मुख्य मंत्री को एक बढ़िया मसाला मिल जाएगा। वह यहा से सीधे दिल्ली जाएंगे। वह संजय गाधी से मिलेंगे और कहेंगे—आपने जिस आदमी को मुख्य मंत्री बनाया है, वह तो आपकी ही जड़ें खोदने लगा है। वहा इंदिरा-विरोधी और कांग्रेस-विरोधी लेखकों के नाम पर पुरस्कार बाटे जा रहे हैं। तब सोचिए, क्या होगा? क्या आप मुख्य मंत्री बने रह सकेंगे? क्या आपका यह मंत्री मंडल टिका रह सकेगा? मुख्य मंत्रीजी, हम लोगो ने बहुत मुश्किल से पिछले मुख्य मंत्रीजी से मुक्ति पायी है और आपको यह सिंहासन दिलवाया है।

यह सुनते हुए मुख्य मंत्री का चेहरा सूखता जा रहा था।

—मुख्य मंत्रीजी, मैं आपसे यह अनुरोध करता हू कि आप भावना मे बहकर ऐसा कोई कदम मत उठाए कि हम सबका बेड़ा गर्क हो जाए। बड़ी लम्बी तपस्या और लड़ाई के बाद हममें से कुछ लोगो को पहली बार मंत्री बनने का सौभाग्य मिला है। एक बात और मैं आपको बताना चाहता हू कि हमारी सरकार को कृष्णकातजी के नाम पर कोई पुरस्कार नही देना चाहिए।

मुख्य मंत्री—हा, हा, बताइए।

सूचना मंत्री—शायद, काफी लोगों को यह पता नही है कि कृष्णकात-जी जनसंघी थे।

एक मंत्री—वह कैसे?

मुख्य मंत्री—नही, नही, ऐसा नही हो सकता। इतना तो मैं अच्छी तरह जानता हूं कि कृष्णकातजी का किसी भी पार्टी से कोई संबंध नही था।

सूचना मंत्री—मेरे पास प्रमाण है कि कृष्णकातजी जनसंघी थे।

मुख्य मंत्री—फिर बताइए।

सूचना मंत्री—शायद आपको पता हो या नही भी पता हो, क्योंकि तब आप दिल्ली में थे।

मुख्य मंत्री—क्या?

सूचना मंत्री—दैनिक समाचार ने कृष्णकात पुरस्कार की घोषणा भी कर दी है। चूंकि दैनिक समाचार एक जनसंघी अखबार है और कृष्णकात-जी भी एक जनसंघी थे, फलतः इस दैनिक ने कृष्णकातजी के नाम पर पुरस्कार देने का निश्चय कर लिया है।

मुख्य मंत्री—क्या यह सच है?

सूचना मंत्री— यह बात सौ फीसदी सही है। एक बात और। अगर [illegible] कि [illegible] तरह जानते हैं कि क्या होगा। इसलिए मैं आपसे यह अनुरोध करता हूं कि अपनी सरकार के कल्याण को ध्यान में रखकर इस सूची से कृष्णकांतजी का नाम हटा दिया जाय। ऐसा करने मे ही हम सबका भला है।

मुख्य मंत्री—कितने लोग चाहते हैं कि इस सूची से कृष्णकांतजी का नाम हटा दिया जाय ? कृपया अपना-अपना हाथ उठाएं।

प्रत्येक मंत्री ने अपना हाथ ऊपर की ओर उठा दिया।

मुख्य मंत्री—शिक्षा मंत्रीजी, अपनी सूची से आप कृष्णकांतजी का नाम निकाल दें। एक लेखक के लिए अपनी सरकार को संकट में डालना बेवकूफी होगी। हमें आला कमान की खुशी और नाराजगी पर सबसे पहले ध्यान देना है।"

"फिर क्या हुआ कृष्णकांतजी ?"—मनोहर ने अधीर होते हुए पूछा।

"फिर क्या होना था। सूची से मेरा नाम काट दिया गया। अगले दिन राज्य के दिवंगत साहित्यकारों के नाम से बीस पुरस्कारों की घोषणा सरकार के द्वारा कर दी गयी। एक बात बताऊं, मनोहर ?"

"जी, बताइए।"—मनोहर था।

"इस निर्णय से मेरी आत्मा को जरा भी कष्ट नहीं हुआ। हां, इस बात का दुःख जरूर हुआ कि एक राज्य का मुख्य मंत्री भी आज कितना लाचार होता है ! वह कोई भी स्वतंत्र निर्णय नहीं कर सकता। वह सबसे पहले अपनी नौकरी बचाने की चिंता करता है।"

"नौकरी ?"—मनोहर ने टोका।

"हां नौकरी। मुख्य मंत्री भी तो नौकरी ही करता है प्रधान मंत्री की और उसके युवराज की। आज एक मुख्य मंत्री को उसके पद से जितनी आसानी से हटाया जा सकता है, उतनी आसानी से एक चपरासी को भी नौकरी से नहीं निकाला जा सकता। यदि चपरासी को कोई नौकरी से निकालना भी चाहे तो वह न्यायालय की शरण में जा सकता है, पर बेचारे मुख्य मंत्री के लिए तो न्यायालय के दरवाजे भी बंद हैं।"

सोलह

"मनोहर, तुम्हें तो यह बात मालूम ही नहीं है कि सांवरिया की नजर मेरे घर पर उस समय से थी, जब मैं जीवित ही था। मेरे जीते जी तो उसकी मनोकामना पूरी नहीं हो सकी। मेरे मरने के बाद उसने जो दस हजार रुपए खर्च किये थे, रक्षाबंधन के दिन उसने संगीता और विनीता को सोने के जो आभूषण दिए थे, उसने मेरी शव-यात्रा के जो चित्र फटाफट लिए थे और वह मेरे दोनों बेटों को जो बराबर उपकृत करता रहा—उसके पीछे क्या वजह थी, क्या तुम जानते हो?"

"जी नहीं।"—मनोहर ने जवाब दिया।

"मनोहर, सांवरिया व्यापारी का बेटा है और जो व्यापारी होता है, वह एक पाई भी फिजूल खर्च नहीं करता। सांवरिया ने इन छोटे-छोटे कामों में जो अपनी पूंजी लगाई, उसका सबसे बड़ा लाभ उसे यह हुआ कि कमला सांवरिया को अपना बेटा मानने की भूल करने लग गई। मेरी बेटियां संगीता और विनीता उसे अपने सगे भाई से भी ज्यादा चाहने लगीं। अमर और अरुण तो सांवरिया के चमचे ही बन गए थे। इस प्रकार मेरे ही घर में सांवरिया का ऐसा प्रभाव बढ़ा कि वह वहां का बेताज बादशाह बन बैठा। वह जो कहता, उसे लोग शिरोधार्य मानने लग गए।"

"यह तो बहुत ही बुरा हुआ।"—मनोहर ने बात काटते हुए कहा।

"मनोहर, जो हुआ उसकी मैंने अपने जीवन-काल में कभी कल्पना तक नहीं की थी। पर, ऐसा होना ही था। जिस घर में दो जवान बेटे हों और दोनों ही कामचोर हों, उस घर का आखिर हो भी क्या सकता था?"

"मैं समझा नहीं, आप किस बात की ओर इशारा कर रहे हैं?"—मनोहर ने पूछा।

"मैं एक बड़ी घटना की ओर इशारा कर रहा हूं।"

"कैसी घटना?"

"अगस्त का महीना था। पिछले पंद्रह दिनों से मूसलाधार वर्षा हो रही थी। कमला, संगीता और विनीता मेरे कमरे में सो रही थीं। बाहर वाले कमरे में अरुण सोया था। बीच के कमरे में अमर सोया था। रात का समय था। यही कोई दो बज रहे होंगे। एकाएक एक भयानक आवाज हुई और उसके बाद ही मेरा कमरा भहरा कर गिरने लगा। कमला की नींद उचट गई। उसने संगीता और विनीता को तुरन्त जगाया। वे तीनों कमरे के बाहर आई ही थी कि कमरे की सभी दीवारें पूरी तरह जमीन पर गिर

पड़ी। इस झटके का नतीजा यह हुआ कि अमर के कमरे की दीवारें भी गल-गल कर गिरने लगी। कमला ने चिल्ला-चिल्ला कर किसी प्रकार अमर को जगाया। अमर जैसे ही अपने कमरे के बाहर आया, छप्पर जमीन पर आ गिरा। सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ की तरह ध्वस्त होते मकान को देखते रहे। वर्षा के पानी मे दीवारो की मिट्टी गल-गल कर बहने लगी। देखते-ही-देखते आंगन मे मिट्टी-ही-मिट्टी नजर आने लग गई। संगीता और विनीता यह सब देखकर पत्थर की मूरत जैसी हो गईं। कमला को एकाएक याद पडा कि अरुण कही दिखाई नही पड़ रहा है। वह अरुण के कमरे की ओर दौड़ी। अरुण का कमरा सुरक्षित था और वह गहरी नींद मे सोया पडा था। कमला ने सबको अरुण के कमरे मे ही बुला लिया। कमला रह-रह कर बोल रही थी—इस पानी मे सब कुछ बर्बाद हो जाएगा···लगता है कुछ भी नही बचेगा···"

"फिर क्या हुआ ?"

"मेरे परिवार और घर के लिए यह विनाश-लीला की रात थी। मेरा कच्चा मकान घुल-घुलकर बह रहा था और मेरी पत्नी, बेटिया तथा अमर गीले कपडो मे खडे-खडे ठिठुर रहे थे। अरुण के कमरे मे एक तौलिया पडा हुआ था। सभी की निगाहे उस तौलिए पर टिकी हुई थी, पर एक तौलिए से क्या होता ? कमला ने ही कहा—ऐसे मे तो हम लोग बीमार पड जाएगे। उसने किसी प्रकार अरुण को जगाया। वह बहुत मुश्किल से जगा। अपने कमरे मे सबको जमा देख वह चिल्ला पडा—क्या बात है ? आप सब मेरे कमरे मे क्यो जमा हैं ? सबके [illegible] बात है ? — [illegible] रे [illegible] ब [illegible] । वह एकाएक उदास हो गया [illegible] गया है।—अरुण ने मा, कमरे मे चादर, लुगी वगैरह जो कुछ भी है तुम लोग उसे पहन लो।—उसने मा से कहा—यह बोल कर वह बरामदे पर आ गया।"

"फिर बारिश कब रुकी ?"—मनोहर पूछ बैठा।

"सुबह को लगभग छह बजे बारिश थम गयी। कमला ने आगे बढकर सदूक तथा कुछ सामानो को ढूढना चाहा। उसने कदम बढाया ही था कि उसका एक पैर गीली मिट्टी मे धसने लग गया। वह चीख पड़ी। संगीता और विनीता ने आगे बढकर मा को मिट्टी मे पूरी तरह गिरने से बचा लिया। कमला को बरामदे पर बिठा दिया गया। वह बिसुर-बिसुर कर रो रही थी। वह कह रही थी—आज सब कुछ लुट गया। सिर छुपाने के लिए एक झोपडी बच रही थी, भगवान से वह झोपड़ी भी नही देखी गयी।

"अमर और अरुण क्या कर रहे थे इस समय ?" मनोहर ने जरा रोष के साथ पूछा।

"अमर और अरुण सांवरिया के पास चले गए थे।"

"तब सांवरिया ने क्या किया ?"—अरुण की आवाज अभी भी तेज थी।

"कुछ देर के बाद सांवरिया अपनी कार में आया। कार में अमर और अरुण दोनों ही थे। वह अपने साथ एक बड़ी अटैची लेकर आया था। कमला की ओर अटैची बढ़ाते हुए सांवरिया ने कहा— मांजी, इस अटैची में साड़ियां और ब्लाउज हैं। आप लोग अपने-अपने कपड़े बदल लें।— संगीता ने आगे बढ़ कर अटैची उठा ली। सांवरिया घूम-घूम कर गिरे हुए घर को देखने लगा। मेरे घर के गिर जाने से सांवरिया मन-ही-मन कितना खुश हो रहा था उस समय, इसकी जानकारी केवल तीन को है।"

"केवल तीन को ? यह कैसे ?"—मनोहर पूछ बैठा।

"सांवरिया को, मुझे और भगवान को।"

"हां, समझ गया अब।"

"बाढ़, तूफान, भूकम्प या किसी महामारी में फंसे हुए लोगों को देखकर राहत कार्यों में लगे हुए धनलोलुप राजनीतिज्ञों, भ्रष्ट अधिकारियों तथा अमानत में खयानत करने वाले समाज-सेवियों को जैसी दिली खुशी मिलती है, वैसी ही खुशी उस समय सांवरिया के अंतर्मन में हिलोरें ले रही थी। भीतर-ही-भीतर उसका क्रूर हृदय अट्टहास कर रहा था—अपनी विजय पर, क्योंकि बिल्ली के भाग्य से छींका टूट चुका था।"

"आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ?"—मनोहर ने विरोध के स्वर में पूछा।

"मनोहर, बात ही ऐसी है। मेरा घर गिर चुका था और सांवरिया यह अच्छी तरह जानता था कि इस गिरे हुए घर को बनाने की कूवत मेरे नालायक बेटों में नहीं है।"

"अच्छा, तो यह बात है।" मनोहर था।

"सांवरिया ने अपने ड्राइवर को बुलाया और कहा—तुम सब लोगों को लेकर बगीचा चलो। माली से कहना कि वह कोठी की सफाई तुरत कर दे। ये लोग वहीं रहेंगे। अरुण, तुम भी साथ चले जाओ। वहां सफाई के लिए मैं कुली लगवा देता हूं। इसके बाद सांवरिया ने अरुण को इशारे से अपने पास बुलाया और उसके हाथ में सौ रुपए का एक नोट थमाते हुए कहा—रास्ते में गाड़ी रोक कर खाने-पीने का थोड़ा सामान ले लेना। इंतजाम करने में थोड़ा समय तो लग ही जाएगा।

अब अरुण अपनी मां की ओर मुड़ गया। उसने कहा—मां,

अब हमे सांवरिया के बगीचे मे चलना है।

यह सुनते ही कमला की आखो से गगा-यमुना बह चली। वह खडी-खडी अपने गिरे हुए घर को इस प्रकार देख रही थी, मानो वहां उसका सर्वस्व था। यह सच है, मनोहर कि वहा कमला का सर्वस्व ही था। उसी घर में कमला एक दिन दुल्हन बनकर आयी थी। पता नही उसने कैसे-कैसे सपने संजोए होंगे उस घर मे? वे सारे सपने आज वहा दफन हो गए थे। वह उसका अपना घर था, जहा उसने मां बनने का सुख प्राप्त किया था, जहां उसके सुहाग ने दम तोडा था। यह वही घर था, जिसके कच्चे आगन मे देश के बड़े-बड़े साहित्यकारो की चरण-धूलि भी घुल-मिल गई थी। इसी घर में [illegible]

[illegible]

भी कमला खुश थी। उसे खुशी थी कि उसके पास सिर छुपाने के लिए एक झोंपडी तो है। आज वही झोपड़ी नही थी। आज वह आश्रय नही था। आज मिट्टी का वह पुराना घरौंदा टूट चुका था। इस घरौंदे के टूटने से जीवन की बाकी आशाएं भी कमला को टूटती-बिखरती नजर आने लगी थी, इसलिए मेरी कमला रो रही थी, उसका हृदय हाहाकार कर रहा था।

सगीता ने आगे बढ कर मा से कहा—चलो मा, गाडी कब से खडी है।

कमला संगीता के साथ दो कदम चली होगी कि एक बार उसने मुड़ [illegible]

[illegible]

था, जो तू मुझसे भी रूठ गई। यदि तू मुझसे नाराज नही है तो मेरा यह हाल देख कर तेरा हृदय फट क्यो नही जाता? मां, तू मुझे भी सीता की तरह अपनी गोद में क्यों नही ले लेती?—यह बोल कर कमला अनायास ही जमीन पर गिरती-सी जा रही थी कि सावरिया तथा अरुण ने आगे बढ कर कमला को थाम लिया।

कमला को किसी प्रकार कार मे बिठाया गया। उसकी अगल-बगल मे सगीता और विनीता बैठ गई। ड्राइवर की बगल में अरुण बैठ गया।

कार बगीचा की ओर चल पड़ी।

"इसके बाद क्या हुआ?"—मनोहर ने अधीरता के साथ पूछा।

"इसके बाद सांवरिया ने घूम-घूम कर गिरे हुए घर का अच्छी तरह मुआयना किया। वह अमर के कमरे के पास आ गया। उसने चीखते हुए

कहा—अमर, तुम्हारे और अरुण के कमरे की दीवारें भी हिलने लगी हैं, ये भी भहरा कर गिर पड़ेंगी।

अमर ने देखा कि सांवरिया ठीक ही बोल रहा था।

सावरिया ने फिर कहा—यह दीवारें कुछ ही देर मे गिर पड़ेंगी। यदि ये खुद नही गिरती हैं तो इन्हें गिरवा देना ही ठीक होगा नही तो किसी के साथ भी कोई दुर्घटना हो सकती है।

अमर बड़ा गमगीन था। उसने धीरे से कहा—शायद ऐसा ही करना ठीक रहेगा।

सावरिया कुछ सोचने में मशगूल हो गया। कुछ देर के बाद उसने कहा—अमर, एक काम करो।

—क्या ?—अमर ने पूछा।

—चार कुली ले आओ। इन दीवारो को गिरवा ही दें। साथ-साथ मलबे को एक किनारे भी करवा देना ठीक रहेगा।

—यदि इन दीवारो को गिरवा दिया गया तो सामने का कमरा भी टूट जायेगा। ऐसे में यहा एक कमरा भी नही बचेगा फिर यहा की रखवाली कैसे होगी ?

—इसकी चिंता तुम मत करो। शाम तक एक किनारे मैं यहां एक शेड खड़ा करवा दूगा। यहा पहरेदारी के लिए एक दरवान रहा करेगा।—सावरिया ने साधिकार कहा।

—तब तो दीवारों को गिरवा देना ही ठीक रहेगा।—अमर ने धीरे से कह दिया।

—फिर तुम जाओ और अपने साथ जल्दी से चार कुली लेते आओ। मैं यहीं हू।—सांवरिया ने ऐसे कहा मानो वह अपने मुनीम को आदेश दे रहा हो।

अमर चला गया।

सावरिया अब अकेला था। उसने एक बार अपनी दृष्टि टूटे हुए घर पर दौड़ा दी। उसकी आखों में एक बहुमंजिली इमारत उभरने लगी··· इमारत में दूकानें हैं···कार्यालय हैं···एक बैंक भी है···सामने चमचमाती हुई कारें खड़ी हैं···सीढ़ियों से इमारत पर लोगो का चढ़ना-उतरना जारी है···

सावरिया एक बार मन-ही-मन अट्टहास कर उठा। केवल इतना निकला—"जय बजरंग बली, तोड़ दुश्मन की नली

सावरिया ने ऐसा क्यों कहा ?"—मनोहर ने जरा उत्तेजित पूछा।

"पता नहीं, उसने यह बात क्यों कही ? हो सकता है कि वह मेरे घर वालों को अपना दुश्मन समझता हो। यदि ऐसी बात है, तो उसे बजरंग बली को देशी घी के लड्डू चढाने चाहिए थे; क्योंकि उसके बजरंग बली ने झोपडी तो तोड ही दी थी। अब केवल दुश्मन की नली ही तो बच रही थी ''वह नली भी अब टूट ही जाएगी'''उस नली मे अब धरा ही क्या है ? मनोहर, अब मैं कुछ देर के लिए चुप रहना चाहता [redacted]। तुम अपना टेप रेकार्डर बंद कर दो।"

"मनोहर, अब तुम अपना टेप रेकार्डर चालू कर दो। मैं बोलना चाहता हूं।"—कृष्णकांतजी की आवाज सुनाई पड़ी।

मनोहर कुछ सोच रहा था। उसने हड़बड़ा कर कहा—"जी, अभी चालू करता हूं। लीजिए, मेरा टेप रेकार्डर चालू हो गया।"

"शाम को बगीचे मे एक ट्रक पहुंचा। उसके पीछे-पीछे सांवरिया की कार भी थी।"

"ट्रक मे क्या था ?"—मनोहर ने उत्सुक होते हुए पूछा।

"ट्रक मे नए-नए पांच बिस्तर थे। पांच पलंग थे। इस्पात की दो गोदरेज आलमारियां थीं। एक शृंगारदान था। एक डाइनिंग टेबुल और छह कुर्सियां थीं। एक सोफा सेट था। गैस का एक चूल्हा था। दो गैस के भरे हुए सिलिंडर थे। खाने-पीने के सामान और बर्तन वगैरह थे। ट्रक के साथ कुछ मजदूर भी आए थे। सांवरिया ने स्वयं अपनी देख-रेख मे सभी सामानों को ट्रक से उतरवाया और कोठी मे करीने से सजवा दिया। अंत में कार की डिक्की से उसने लोहे का एक बड़ा ट्रंक निकलवाया।"

"ट्रंक मे क्या था ?"—मनोहर चुप नहीं रह सका।

"ट्रंक मे सबके लिए नए कपड़े थे। जब सारे काम पूरे हो गये, सांवरिया ने अपने माली को अपने पास बुलाया और कमला की ओर संकेत करते हुए कहा—आज से माजी का परिवार यहीं रहेगा। यह याद रखना कि किसी को कोई तकलीफ नहीं हो। यही समझो कि आज से इस बगीचे और कोठी के मालिक ये लोग ही हैं। इनकी मर्जी के खिलाफ आज से यहां कोई काम नहीं होना चाहिए।

—जी मालिक।—माली ने हाथ जोडते हुए विश्वास दिलाया।

—ठीक है। अब तुम जाओ।—सांवरिया ने आदेश दिया।

माली चला गया।

सांवरिया ने कुर्सी से उठते हुए एक अंगड़ाई ली। अब वह बोल रहा था—अरुण, जब-जब मैं यहां आता हू, मेरा मन खिल उठता है। क्या जगह

है ! चारों ओर शांति । किसी प्रकार की आवाज नहीं । जहां भी देखो, चारों तरफ हरियाली ही नजर आती है या फिर रंग-बिरंगे फूल दिखलाई पड़ते हैं । इच्छा होती है कि मैं यहीं रहा करूं । पर, अपनी किस्मत में कहां लिखा है इस कोठी और बगीचा का सुख भोगना ?

—क्यों, तुम ऐसा क्यों कहते हो ?—एक प्रकार से अरुण ने विरोध करते हुए कहा ।

—यार, कारोबार से फुर्सत कहां मिलती है ? मंडी में रुपए हैं, पर वहां शांति नहीं । यहां शांति है, पर यहां रुपए नहीं हैं । तुम तो जानते हो कि रुपए कमाए बगैर मुझे नींद भी नहीं आती है ।—यह बोलकर सांवरिया कमला की ओर बढ़ गया । उसने कमला से कहा—मांजी, आप किसी प्रकार की भी चिंता नहीं करें । आपका घर गिर गया तो क्या हुआ ? यह कोठी आपकी ही है ।

—ऐसा न कहो, बेटा ।—कमला बोल गयी ।

—मांजी, क्या मैं आपका बेटा नहीं ? यदि आप ऐसी बातें करेंगी तो मैं रूठ जाऊंगा । यदि यह सांवरिया रूठ गया तो इसे मनाने के लिए आपको खीर बनानी होगी और अपने ही हाथ से खीर खिलानी भी होगी ।

इस बात पर कमला को हंसी आ गयी । वह अपने को सांवरिया के एहसानों के बोझ से इतना दबा हुआ पा रही थी कि उसके मुंह से आभार के शब्द भी न फूट सके । वह केवल सांवरिया को निहारती रह गई । शायद कमला अपनी अनुभवी आंखों के सहारे सांवरिया के अंतर्मन को पढ़ने का प्रयास कर रही थी ।

सांवरिया फिर बोल पड़ा—मांजी, यह कार आज से यहीं रहेगी । आप जहां चाहें, इससे आना-जाना कर सकती हैं ।

कमला ने अपना मुंह खोला—नहीं, नहीं, बेटे । हमें कार-मोटर से क्या लेना-देना है ? कार यहां मत छोड़ना । यहां गाड़ी छोड़ने से तुम्हारा नुकसान होगा ।'

सांवरिया ने मुस्कराते हुए कहा—मांजी, आपके आशीर्वाद से आपके बेटे के पास कई गाड़ियां हैं । यदि एक गाड़ी मां की सेवा में रह ही जाएगी, तो मेरी कोई हानि नहीं होगी । ठीक है, अब मैं चलूंगा । रोज एक बार किसी समय जरूर यहां आ जाया करूंगा—हाल-समाचार पूछने ।

यह बोलकर सांवरिया चला गया ।

वह आज बहुत खुश था ।"

"उसकी बहुत खुशी का क्या कारण था ?"—मनोहर ने सवाल पूछा ।

"मनोहर, इस सवाल का जवाब अब आज नहीं दूगा। इसका जवाब मैं अगले किसी दिन दूगा।"

सत्रह

"मनोहर, अरुण पहले शराब नहीं पीता था। लेकिन, पिछले कुछ दिनों से उसने भी पीनी शुरू कर दी थी।"

"यह तो उसने कोई अच्छा काम नहीं किया।"—मनोहर ने अपनी राय प्रकट की।

"मेरे मरने के बाद मेरे परिवार में जो भी हुआ'''वह बुरा ही हुआ। लो सुनो—एक और बुरा नाटक।"

"बुरा नाटक?"

"हां, बुरा नाटक। सावरिया, अमर और अरुण तीनों रेस्तरां के एक केबिन में बैठे हुए थे। टेबुल पर ह्विस्की तथा सोडा की बोतलें पड़ी थीं। एक प्लेट में तले हुए नमकीन काजू और मछली के कुछ टुकड़े थे। लो, सुनो, तीनों की आपसी बातचीत—

सावरिया ने काजू के दो दाने अपने मुह में डालकर उन्हें चबाते हुए कहा'''देखो भाई, अमर, मैंने तो सोचा था कि तुम लोग दोनों भाई मिलकर संगीता और विनीता के लिए जल्दी ही लड़के ढूढ लोगे, पर तुम लोगों ने तो अब तक कुछ किया ही नहीं। ऐसे में कैसे काम चलेगा?

अमर मछली कुतर रहा था। वह बोला—क्या करूं यार, लड़केवाले बहुत ज्यादा मांगते हैं। वे जितना मांगते हैं, उस हिसाब से तो तीन लाख रुपए शादी में ही निकल जायेंगे। ऐसे में तुम ही सोचो कि हम दोनों भाइयों को क्या मिल पाएगा?

सांवरिया अनुभवी व्यापारी की तरह बोलने लगा—देखो अमर, जिस प्रकार बाजार में सस्ते और महगे दोनों प्रकार के माल बिकते हैं, उसी प्रकार शादी के बाजार में भी सस्ते-से-सस्ते दूल्हे और महंगे-से-महंगे दूल्हे बिकते हैं, तुम दोनों भाई यदि महगे दूल्हे वाले लोगों के पास जाओगे तो सौदा आखिर पटेगा कैसे?

अरुण अब तक चुपचाप बैठा दोनों की बातें सुन रहा था। उसने थोड़ी ह्विस्की गटकते हुए कहा—और यह तय है कि जब तक संगीता और विनीता की शादी नहीं हो जाती, मां अपनी जमीन बेचने के लिए कभी भी

तैयार नहीं होगी।

—विवाह के पहले तो मै भी कुछ नही बोल सकता। ऐसा करना मांजी के लिए घातक हो सकता है।—मां के नये लाडले सांवरिया ने कहा।

—समझ मे नही आता कि मैं कैसे क्या करूं ?—अमर ने जरा नाटक करते हुए अपने सिर के बालों को नोचना शुरू कर दिया।

ए

—मैं कैसे बताऊं, सांवरिया कि अपनी बहनो की शादी के लिए मैं कितनी कोशिश कर रहा [illegible]। क्या करू, साली मेरी किस्मत ही ऐसी है कि मेरी हर कोशिश बेकार हो जाती है।—यह बोलकर अमर ने थोड़ी और चढा ली।

—जितनी देर हो रही है, उससे नुकसान तुम दोनो भाइयों का ही हो रहा है। मेरा घाटा तो जो हो रहा है, वह हो ही रहा है। अब तक तुम लोग बैठे-बैठे एक लाख से ज्यादा उड़ा चुके हो। चलो, इसे मैं एक लाख ही मानता हूं। बच गये, चार लाख। इन्हीं रुपयो मे दोनो बहनों की शादी होनी चाहिए। तुम लोगो को एक छोटा-सा घर भी चाहिए। आखिर—यह सब कैसे होगा ?—सांवरिया ने अमर और अरुण दोनों को आतंकित करने की गरज से यह बात कही।

—अप्पन को न घर चाहिए और न घरवाली। मैं तुम्हे पहले ही अपनी बात बता चुका हूं और अरुण भी यह अच्छी तरह जानता है कि मेरी योजना क्या है ? मैं अपने हिस्से के रुपए लेकर बम्बई चला जाऊंगा। वहां मुझे अपना भविष्य बनाना है। क्या होगा इस फटीचर शहर मे रह कर ? यहां क्या धरा है ?—अमर पर नशे का असर होने लगा था।

—ठीक है, तुम एक लाख के हकदार हो। मगर, ये रुपए तुम्हें कब मिलेंगे ? ये रुपये तो तुम्हे तब ही मिलेंगे जब वह जगह मेरे कब्जे मे आ जाएगी। और जगह मेरे कब्जे मे उसी समय आएगी, जब संगीता और विनीता अपनी-अपनी ससुरालो को चली जायेंगी। इस काम मे जितनी ही देर होगी, तुम्हे रुपए मिलने मे उतनी ही देर होगी। जब तक तुम्हें रुपए नही मिलेंगे, तुम्हे इसी फटीचर शहर मे रहना होगा और नाटक करते रहना होगा। क्यों अरुण, क्या मैंने गलत कहा है ?—अमर को फटकारकर सांवरिया ताव मे लाना चाह रहा था।

अरुण ने धीरे से कहा—सो तो ठीक है।

अमर को सांवरिया की बात कुछ अच्छी नहीं लगी। वह फिर अपने बालो को नोचने लगा। सांवरिया ने उसे ऐसा करने से रोका और कहा—

अमर, तुम रह-रह कर यह क्या नाटक करते हो ? अपने सिर के बालों को नोचने से क्या होगा ?

अमर इस प्रकार बोलने लगा मानो वह रो रहा हो—सांवरिया, मैंने कहा न कि मेरी किस्मत ही साली चौपट है। मैं तुम्हारे पास आता हूं तो तुम मुझे फटकारते हो। मां के पास जाता हूं तो मां मुझसे सीधे मुंह बात नहीं करती। लड़का ढूंढ़ने जाता हूं तो लड़के वाले साले मुझे खाने को दौड़ते हैं। बस चारों तरफ लोग मुझे धकियाते ही हैं। मुझसे कोई भी प्रेम से दो बातें नहीं करता। बोलो, ऐसे में क्या कोई जिन्दा रह सकता है ? बोलो सांवरिया, क्या ऐसी हालत में तुम एक दिन भी जिंदा रह सकते हो ? *—अमर की आवाज कुछ-कुछ लड़खड़ाने लगी थी।*

अरुण सिगरेट लाने के बहाने बाहर निकल गया।

सांवरिया ने बड़े स्नेह से अमर का माथा सहलाते हुए कहा—अमर, मैं जानता हूं कि तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ है। मैं यह भी जानता हूं कि तुम्हारी जिंदगी में किस चीज की कमी है ? यह भी सच है कि अभी तुम्हारा भाग्य तुम्हारा साथ नहीं दे रहा है। घबराओ मत, सब ठीक हो जाएगा। हिम्मत से काम लो। मांजी तुमसे इसलिए ठीक से नहीं बोलती होंगी; क्योंकि *उन्हें लगता होगा कि तुम चुप बैठे हो। संगीता और विनीता की शादी के लिए* तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो। कोई भी मां अपने घर में जवान बेटियों को बिठाकर खुश नहीं रह सकती। रही बात तुम्हारी प्रेमिका की, तो इसके लिए क्या किया जा सकता है ? उसकी शादी हो गयी इसलिए अब उसके लिए रोने से क्या फायदा ? तुम क्यों नहीं समझते कि बम्बई पहुंचते ही तुम हीरो बन जाओगे और हीरो बनते ही [illegible] शादी के लिए लालायित हो जाएगी। [illegible] से भी अच्छी कोई लड़की है, [illegible] गई।

—बस, अब बम्बई की ही तो एक आशा बच रही है, जिसके सहारे मैं जिंदा हूं।—अमर ने सांवरिया के कंधे पर अपना माथा टिकाते हुए कहा।

अरुण सिगरेट लेकर आ गया।

सांवरिया ने एक सिगरेट सुलगा ली। वह जोर-जोर से कश खींचने लगा। अमर की ओर एक सिगरेट बढ़ाते हुए सांवरिया ने कहा—लो, एक लो।

अमर ने उत्तर में कहा—नहीं, पीने के बाद मैं सिगरेट नहीं लेता। सिगरेट लेने से पीने का मजा ही किरकिरा हो जाता है।

सांवरिया ने अरुण की ओर कनखी से देखा। वह बैठा था। उसके गिलास में ह्विस्की उड़ेलते हुए सांवरिया ने कहा—लो, चुप क्यों बैठे हो?

अरुण ने गिलास अपनी ओर खींच लिया और एक बार सांवरिया की ओर कृतज्ञता के साथ देखा। उसने गिलास में थोड़ा सोडा मिला लिया।

—अगहन में जो लगन है, उसमें अभी भी एक महीने का समय बाकी है। तुम दोनों मिलकर कोशिश करो तो शायद कोई काम हो जाय। यदि ऐसा हो जाता है तो इसमें हम सब का भला होगा। इसके बाद मुझे खुला मौसम मिल जाएगा और मैं काम में आसानी से हाथ लगवा सकूंगा। यदि तुम लोग देर करोगे तो फिर यह शादी अगले साल तय होगी। शादी के बाद ही बरसात शुरू हो जाएगी और बरसात में मैं काम शुरू नहीं करवा पाऊंगा। क्यों अरुण, तुम्हारा क्या विचार है?—सांवरिया ने अरुण की पीठ पर अपना दाहिना हाथ रखते हुए कहा।

—जो काम जल्द हो जाय, उसमें देर नहीं ही करनी चाहिए।—अरुण की राय थी।

यह सुनकर अमर को लगा कि अरुण भी उसी पर दोष मढ़ रहा है, फलतः वह एकाएक उखड़ गया—कौन देर कर रहा है? क्या मैं देर कर रहा हूं? देखते नहीं दौड़ते-दौड़ते मेरी हालत पंचर हो गई है।

अरुण कुछ बोलने ही जा रहा था कि सांवरिया ने उसे इशारे से चुप रहने के लिए कह दिया। सांवरिया ने फिर अपना एक हाथ अमर की पीठ पर रख दिया। उसने कहा—अरुण तुम्हारे खिलाफ तो कुछ नहीं बोल रहा है। उसने तो केवल इतना ही कहा है कि जो काम जल्द हो जाय, उसमें देर नहीं ही करनी चाहिए। मेरे जानते अरुण ने कोई गलत बात नहीं कही है।

अमर ने एक बार अरुण की ओर गुस्से से देखा और सिर झुकाकर वह फिर पीने में जुट गया।

कुछ देर तक तीनों चुप थे।

सांवरिया ने एक सिगरेट और सुलगा ली।

अरुण काजू के दाने कुतर रहा था।

काफी देर तक सोचते रहने के बाद अमर ने कहा—सांवरिया, अब देर नहीं होगी। मैं कल ही जाऊंगा—एक जगह।

—कहां?—सांवरिया ने पूछा।

—पता चला है कि एक जगह कुछ लड़के हैं।—अमर ने साफ-साफ कुछ नहीं बताया।

—ऐसा करो, अरुण को भी अपने साथ लेते जाओ।—सांवरिया ने परामर्श दिया।

—नहीं, मैं अकेले जाऊंगा।—अमर ने जोर देते हुए कहा।

—शादी-ब्याह के मामले में अकेले जाना ठीक नहीं रहता है।—सावरिया ने पुनः समझाया।

—यदि ऐसी बात है तो तुम चलो मेरे साथ।—अमर ने तपाक् से कहा।

—मैं तुम्हारे साथ जरूर चलता। पर, मुश्किल यह है कि कल ही अहमदाबाद से एक बड़ी पार्टी आ रही है—मुझसे ही बात करने। मेरा रहना बहुत जरूरी है।—सावरिया ने अपनी लाचारी व्यक्त की।

—तो परसों चलो।—अमर ने दूसरा दांव फेंका।

—वह पार्टी यहां चार-पांच दिनों तक रुकेगी। मुझे हर दम उसके ही साथ लगे रहना है।—सावरिया ने फिर टालने की सफल कोशिश की।

—तो छठे ही दिन चलो।—अमर ने फिर प्रस्ताव रखा।

—छठे दिन शनिवार हो जाएगा और शनिवार को शुभ काम के लिए घर से बाहर निकलना कभी भी ठीक नहीं रहता है। फिर केवल मेरे लिए शनिवार तक रुकना भी उचित नहीं लगता। कहा गया है—शुभस्य शीघ्रम्। मेरे विचार से तुम्हें भी इस शुभ काम में देर नहीं करनी चाहिए। तुम्हें कल अपने घर से जरूर इस काम के लिए निकल जाना चाहिए। क्यों तो इस बार मुझे भीतर से ऐसा लग रहा है कि सगीता और विनीता की शादी ठीक होकर रहेगी।—सावरिया ने आत्मविश्वास प्रकट करते हुए अमर को प्रेरित किया।

अमर ने सावरिया की ओर अजीब दृष्टि से देखा। वह एकाएक मुस्करा पड़ा। वह बोला—जब ऐसी बात है तो मैं कल ही घर से निकलता हूँ। भगवान करे कि तुम्हारी बात सच निकले।

सावरिया ने अपनी सिगरेट बुझाकर उसे सोडे की बोतल में घुसेड़ दिया। उसने एक विचित्र मुद्रा में अमर की पीठ को थपथपाते हुए कहा—अमर, मेरा मन कभी भी झूठ नहीं बोलता। देखना, इस बार तुम्हें जरूर सफलता मिलेगी।

यह सुनकर अमर गद्‌गद् हो गया।

इसी बीच बेयरे ने आकर पूछा—और कुछ साहब?

सावरिया ने छोटा-सा उत्तर दिया—कुछ नहीं। बिल जल्दी लाओ।

बेयरा चला गया।"

"इसके बाद क्या हुआ?"—मनोहर ने पूछा।

"मनोहर, इस बार सावरिया की बात सच निकली।"

"कैसी बात?"—मनोहर पूछ बैठा।

"अमर दोनों बहनों के लिए लड़के ढूंढ़ने निकला। संगीता तथा विनीता दोनों बहनों के लिए लड़के मिल गए। संगीता के लिए जो लड़का मिला, वह बैंक मे नौकरी करता है। विनीता के लिए जो लड़का मिला वह कॉलेज में व्याख्याता है। दोनों लड़के अच्छे हैं और सौदा भी सस्ते मे पट गया।"—कृष्णकांतजी की आवाज में प्रसन्नता का पुट था।

"यह तो खुशी की बात हुई।"—मनोहर पुलक उठा।

"हां मनोहर, वास्तव मे यह मेरे लिए खुशी की बात थी। संगीता और विनीता दोनों अपने-अपने घरों को चली जाए, इससे अधिक मुझे क्या चाहिए था। इस समाचार को सुनकर कमला भी बहुत खुश हुई। जिस दिन उसे यह खबर मिली, उसके चेहरे पर मैंने पहली बार मुस्कराहट को फैलते देखा—अपनी मृत्यु के बाद।"

"यह स्वाभाविक ही है।"—मनोहर ने जोड़ा।

"कमला उस दिन कितनी खुश थी, इसका अनुमान एक घटना से लगाया जा सकता है।"

"किस घटना से?"

"हुआ यह कि अमर के बाहर से आने के बाद सांवरिया आया। कमला ने ही उसे यह शुभ संवाद सुनाया और कहा—बेटा, आज ऐसे नही जाने दूगी। अभी मैं खीर बनाकर लाती हूं और आज मैं तुम्हे अपने ही हाथ से खीर खिलाऊंगी।

सांवरिया का मन तो खुद आज जश्न मना रहा था। वह बोला—माजी, आज मैं भी यहा से यों ही टलने वाला नहीं। आपके हाथों खीर खाकर ही जाऊंगा।

सांवरिया ने संगीता और विनीता दोनों को बुलाया। वे दोनों नही आ रही थी। जब कमला ने दोनों से कहा, तभी वे दोनों सांवरिया के सामने आईं। सांवरिया ने हंसते हुए कहा—इस बगीचे मे अब तो राजा की आएगी बारात···रंगीली होगी रात···राजा सैंया बजाएगा बाजा···दुल्हन बनेंगी दोनों बहना···और मैं बेगानी शादी मे अब्दुल्ला दीवाना···जब-जब उनकी याद आएगी दिल को लगेगी ठेस···

यह सब सुनकर दोनों बहनें शरमाती हुई भाग खड़ी हुईं। विनीता पीछे थी। सांवरिया ने लपक कर उसकी बांह पकड़ लेने की कोशिश की, मगर वह सफल नही हो सका।"

"मैं समझ नहीं सका कि आप कहना क्या चाहते हैं?"—मनोहर ने पूछा बड़े साहस के साथ।

"मनोहर, इस समय सांवरिया के मन में कुत्सित भावनाएं हिलोरें मार

रही थी। यदि विनीता पकड़ मे आ जाती तो पता नही सांवरिया उसके साथ किस प्रकार का दुर्व्यवहार कर जाता।"

"अमर तो घर मे था न ?"—मनोहर ने चिंतित होते हुए पूछा।

"वह शौचालय गया हुआ था और कमला खीर बनाने चली गयी थी।"

"अच्छा, यह बात है।"

"कुछ देर के बाद कमला कटोरी मे खीर लेकर आ गई। अब वह अपने ही हाथ से आस्तीन के इस सांप को खीर खिलाएगी।"

अट्ठारह

"संगीता और विनीता की शादी धूम-धाम से संपन्न हो गई। मुझे यह आशा नही थी कि दोनों भाई अपनी बहनों के ब्याह में इतनी दिलचस्पी लेंगे। खैर, दोनो भाइयो ने मिलकर इस काम को ढंग से पूरा कर दिया। कमला अब अकेली हो गई थी। कोठी मे अकेले पड़े-पड़े जब वह ऊबने लगती तो बगीचे मे आ जाती। पेड़-पौधों को देखने और उनकी सेवा करने मे उसे अपार आनन्द मिलता। उस दिन वह एक पौधे की जड़ के आस-पास उग आई घास को उखाड़ रही थी। उसी समय उसे एक आवाज सुनाई पड़ी —मां, मां, जरा जल्दी इधर आओ।"

"यह किसकी आवाज थी ?"—मनोहर से न रहा गया।

"अमर और अरुण दोनो ही एक साथ कमला को पुकार रहे थे।"

"क्यों ?"—मनोहर अधीर था।

"कमला अमर और अरुण के पास आ गयी। लो, अब तीनों की बात-चीत सुनो—

अमर—मां, संगीता और विनीता की शादी तो हो गई। तुम्हारी चिंता तो अब दूर हो गई न ?

कमला—हां, चिंता तो जरूर दूर हो गई। अब जरूरत हुई तो मैं आसानी से मर भी सकती हू।

अरुण—मां, ऐसी अशुभ बात क्यो अपने मुह से निकालती हो ? हम तुम्हें मरने देंगे तब न ?

कमला—बेटा, बस मरना ही तो किसी के बस में नहीं है। जिस दिन बुलावा आ जाएगा, उस दिन जाना ही होगा। उस दिन मुझे जाने से कोई

नही रोक सकेगा। न तुम रोक पाओगे और न अमर।

अमर—यह तो सच है, मा। इससे बड़ा सच और कुछ भी नही।

कमला—तुम लोगो ने मुझे आखिर बुलाया किसलिए था?

अमर—मां, कल ऐसा हुआ…

कमला—कल क्या हुआ? पूरी बात तो कहो।

अमर—कल मैंने सावरिया से पूछा—अब तक कितना खर्च हो गया उसका। वह तो हिसाब दिखा ही नही रहा था। जब हम दोनों ने उसके ऊपर बहुत जोर डाला तो उसने अपना मुह खोला।

कमला—यह तो तुमने ठीक ही किया। वह बेचारा शुरू से ही खर्च करता चला आ रहा है। यह तो उसकी बड़ी मेहरबानी है, जो वह हम लोगों पर इतनी दया रखता है। वह नही होता तो पता नही क्या कुछ होता? सावरिया के चलते तुम्हारे बाबा का किरिया-करम भी मजे में निपट गया। उसकी मदद से ही संगीता और विनीता के हाथ भी पीले हो गए। यह सावरिया की ही मेहरबानी का नतीजा है कि हम बेघर होकर भी आज बेघर नही हैं।

अरुण—सावरिया ने मित्र होकर जो काम कर दिखाया है, वह एक दृष्टांत है। मा, आज के जमाने मे ऐसे दोस्त मिलते कहां हैं?

कमला—हा बेटा, तुमने ठीक ही कहा है। तो सांवरिया ने क्या बताया? अब तक उसका कितना खर्च हो गया है?

अमर—अब तक उसने ढाई लाख रुपये खर्च किए हैं।

कमला—[आश्चर्य से]—ढाई लाख! इतने रुपये कहां खर्च हो गए?

अमर—बाबा के मरने से लेकर संगीता-विनीता की शादी तक सावरिया ने जो कुछ भी खर्च किया है, उसके एक-एक पैसे का उसके पास हिसाब है। पौने दो लाख रुपये तो संगीता और विनीता की शादी में ही लग गए।

यह सुनकर कमला ने कुछ भी नही कहा। उसने केवल एक लम्बी सास खीची।

अरुण—मा, अब हमें कुछ करना चाहिए। ऐसे बैठे-बैठे कब तक काम चलेगा?

कमला—तो करते क्यों नही? मैंने कब मना किया है?

अरुण—मा, कुछ करने के लिए भी तो पूजी चाहिए।

अमर—मा, छोटे-मोटे काम के लिए भी आजकल लाखों की पूजी की जरूरत होती है।

कमला—सो तो ठीक है। मगर इतने रुपए आएंगे कहां से?

अपनी मां की बात सुनकर अमर ने अरुण की ओर देखा। अरुण ने अमर की ओर देखा।

अमर—मां, अब तो एक ही रास्ता बचता है।

कमला—कौन-सा रास्ता ?

अरुण—हम लोग अपनी जमीन बेच दें।

कमला यह सुनकर चुप रह गयी। उसने बारी-बारी से दोनों भाइयों को एक बार देखा।

अमर—हां मां, वहां जाकर भी अब क्या होगा? वह मुहल्ला अब रहने लायक भी नहीं रह गया है। रात-दिन वहां ट्रकों का आना-जाना लगा रहता है। जब देखो तो पौं-पौं और पाय-पांय होती रहती है। वहां यदि मकान फिर से बनवा भी लिया जाय, तो कम-से-कम डेढ़ दो लाख रुपये तो लग ही जाएंगे। इतने रुपये खर्च करने के बाद भी वहां चैन से नींद नहीं आ पाएगी। क्यों अरुण, तुम क्या सोचते हो ?

कमला अभी भी दोनों भाइयों को बारी-बारी से देख रही थी।

अरुण—बिलकुल ठीक, अब उस मुहल्ले में आना बेकार है। यों भी वह घर हमारे लिए शुभ नहीं था। एक ज्योतिषी ने तो मुझसे कहा भी था—जब तक आप लोग उस घर में रहेंगे, आप लोगों को हर तरह की हानि ही होती रहेगी।

अमर—उस ज्योतिषी ने बिलकुल सही कहा था। देखो न, बाबा उस घर में थे। नतीजा यह हुआ कि गरीबी और फटेहाली में उनकी जिंदगी गुजर गयी। वह कुछ भी नहीं कर सके। वहां वह मर भी गए। देखने की बात यह है कि वहां से हटने के बाद ही संगीता और विनीता की शादी हो सकी। इससे भी यह प्रमाणित हो जाता है कि वह घर हम लोगों को फल नहीं रहा था।

अब कमला से और नहीं सुना गया। उसने जरा तेज आवाज में कहा—जो हो गया, उसे दुहराने की कोई जरूरत नहीं है। वह घर जैसा भी था, अपना था। तुम लोग साफ-साफ बताओ कि तुम दोनों की नीयत क्या है ?

अमर—मां, सांवरिया का कर्ज काफी बढ़ गया है। यह कर्ज ढाई लाख का है। अरुण को भी कारोबार के लिए पूंजी चाहिए। मुझे भी कुछ चाहिए ही। तुम्हारे हाथ में भी कुछ रहना ही चाहिए। ऐसी हालत में एक ही रास्ता बचता है कि वह जमीन बेच दी जाय।

अरुण—उसे रखने से कोई लाभ तो है नहीं, मां। यदि हम लोग उस जमीन को बेच दें तो सांवरिया का कर्ज भी उतर जाएगा और मुझे कारो-

बार के लिए पूंजी भी मिल जाएगी। साथ-साथ अमर का भी काम बन जाएगा। तुम्हारा हाथ भी खाली नहीं रहेगा।

अमर—ये सारे काम एक साथ हो जाएंगे, क्योंकि लोग पांच लाख तक देने के लिए तैयार हैं।

कमला—कौन दे रहा है पांच लाख ?

अमर—मां, कई खरीददार तैयार हैं।

कमला—याने तुम लोगों ने खरीददार भी तय कर लिया है ?

दोनों भाइयों ने चुप्पी साध ली।

कुछ देर तक चुप रहने के बाद अरुण ने अपना मुंह खोला—मां, मेरा ख्याल है कि यदि हम लोग जमीन बेचना ही चाहते हैं, तो हमें एक बार सांवरिया से भी पूछ लेना चाहिए।

कमला—क्या ?

अरुण—यही कि क्या वह हमारी जमीन खरीदना चाहेगा ? उसने हम लोगों पर अनेक एहसान किए हैं, इसलिए भी उससे एक बार पूछ लेना बहुत जरूरी लगता है।

अमर—अरे ! यह बात तो मेरे दिमाग में थी ही नहीं। तुमने ठीक ही कहा है अरुण, कि हमें एक बार सांवरिया से भी जरूर पूछ लेना चाहिए।

कमला—तो तुम दोनों भाइयों का फैसला है कि जमीन बेच दी जाय ?

अमर+अरुण—हां, मां।

अमर—ऐसा करने में ही हम सबका भला है।

कमला—जब तुम दोनों की यही मर्जी है, तब मेरी कौन सुनेगा ? जाओ, तुम लोगों को जो ठीक लगे, करो। मुझसे कुछ भी पूछने की जरूरत नहीं है।

यह बोलकर कमला आंगन की ओर चली गयी।

अमर और अरुण ने एक-दूसरे से हाथ मिलाकर एक-दूसरे को इस विजय पर बधाई दी।"

"फिर इसके बाद क्या हुआ ?"—मनोहर ने पूछा।

"इसके बाद दोनों भाई बरामदे से उतर कर सांवरिया के घर की ओर जाने के लिए निकल ही रहे थे कि इसी बीच सांवरिया की कार बरसाती में खड़ी हो गयी। कार से बाहर निकलकर वह चिल्लाने लगा—मांजी, मांजी, आप कहां हैं ? जल्दी आइए। आपको एक खुशखबरी देनी है।

सांवरिया के हाथ में एक समाचार-पत्र था।

अमर और अरुण के रोकने के बावजूद सांवरिया बाहर नहीं रुका। वह

दौड़ता हुआ आंगन की ओर चला गया। उसके पीछे-पीछे अरुण और अमर भी थे।

कमला को देखते ही सांवरिया ठिठक गया। कमला आंगन में बैठी रो रही थी।

सांवरिया ने आगे बढ़कर कमला से पूछा—मांजी, आज तो आपको खुश होना चाहिए, फिर आप रो क्यों रही हैं?

—बहुत खुश हूं बेटा, इसलिए तो रो रही हूं।—कमला ने संदर्भ जाने बगैर कह दिया।

—मांजी, आपने सुबह को आठ बजे का समाचार रेडियो से सुना था?

—हां।—कमला ने कहा।

—क्या?—सांवरिया ने हंसकर पूछा।

—सुना कि मेरी जमीन की कीमत पांच लाख देने वाले कई खरीददार तैयार हैं।—कमला बोली।

यह सुनकर सांवरिया ने एक बार अमर की ओर देखा और फिर अरुण की ओर। दोनों ने अपनी निगाहें झुका लीं। सांवरिया ने कमला से कहा—मांजी, मैं दूसरे समाचार की बात कह रहा हूं।

—कौन-सा समाचार, कैसा समाचार?—कमला का स्वर रूखा हो चला था।

—बाबूजी को अकादमी का मरणोपरांत पुरस्कार मिला है। आज आकाशवाणी ने आठ बजे यह समाचार प्रसारित किया था। देखिए, इस समाचार-पत्र में भी यह खबर छपी है।—सांवरिया ने पुलकित होते हुए कहा।

अमर ने सांवरिया के हाथ से समाचार-पत्र झटक लिया। दोनों भाई भुनभुना कर समाचार पढ़ने लग गए।

—यह कैसा पुरस्कार है?—कमला ने सपाट सवाल किया।

—मांजी, इसे अकादमी पुरस्कार कहते हैं।—सांवरिया ने बताया।

—कौन देता है यह पुरस्कार?—कमला ने फिर सवाल किया।

—यह पुरस्कार केन्द्र सरकार देती है। यह साहित्य का सबसे बड़ा सरकारी पुरस्कार माना जाता है, मां।—अरुण ने बड़े हर्ष के साथ कहा।

—मां, इस पुरस्कार में सरकार दस हजार रुपये नकद देती है।—अमर ने जोड़ा।

कमला चुपचाप अमर और अरुण को देखने लगी और सांवरिया कमला

के मौन को समझने का प्रयास करने लग गया।

अमर ने मौन भंग करते हुए कहा—मां, सावरिया आज एक खुश-खबरी लेकर आया है। क्या आज इसे खीर नहीं खिलाओगी ?

कमला ने अपना मुंह खोला—बेटा, बुरा मत मानना। यह समाचार सुनकर मैं जरा भी खुश नहीं हुई। जिस सरकार ने आज तक मेरे पति की पेंशन का मामला तय नहीं किया है; क्योंकि मेरे पति हिन्दी नहीं जानते थे, वह सरकार उन्हें हिन्दी के लेखक के रूप में दस हजार रुपये का यह पुरस्कार क्यों दे रही है ? यदि पुरस्कार देना ही था तो इस सरकार ने उनके जीवन-काल में ही यह पुरस्कार क्यों नहीं दिया ? मरने के बाद साहित्यकार को सम्मानित करने वाली इस सरकार पर मैं थूकती हूं। आज वह होते, तो वह इस पुरस्कार को कभी भी स्वीकार नहीं करते। यह बात मैं अच्छी तरह जानती हूं। इसलिए मैं इस पुरस्कार की घोषणा पर खुश नहीं हूं और इस पुरस्कार को ठुकराती हूं। अमर, सरकार को ऐसा ही एक पत्र लिख दो।

अमर—मां, जरा सोचो ! यह मामूली पुरस्कार नहीं है।

अरुण—हां मां, इसे मत ठुकराओ। बाबा को आज तक इतना बड़ा पुरस्कार कभी नहीं मिला। यह सबसे बड़ा पुरस्कार है। इसे ठुकराना गलत होगा। दस हजार रुपये की बात है।

कमला ने अमर और अरुण की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा, पर उसने दोनों भाइयों से कुछ भी नहीं कहा। उसने सावरिया से कहा—बेटा, तुमने ही बराबर मेरी सहायता की है। आज भी तुम ही मेरी सहायता कर सकते हो। मैं तुम्हें एक पत्र लिखकर देती हूं। कृपाकर यह पत्र तुम "दैनिक समाचार" के सम्पादक को दे देना। वह इसे अपने समाचार-पत्र में छाप देंगे। इसी से सरकार को भी यह मालूम हो जाएगा कि स्वर्गीय कृष्णकातजी की विधवा ने अकादमी पुरस्कार को ठुकरा दिया है।

यह बोलकर कमला भीतर चली गयी।"

"फिर क्या हुआ ?"—मनोहर उतावला हो रहा था आगे की बात जानने के लिए।

"मेरी कमला ने वही किया, जो मैं करता। उसने पत्र सावरिया को थमा दिया। मेरे दोनों धन-लोलुप कपूत सावरिया के हाथ में पड़े कमला के पत्र को चील की तरह टकटकी लगाकर देखने लगे जैसे कि यह केवल पत्र ही नहीं उनके लिए मौत का परवाना हो।"

"इसके बाद ?"

"सावरिया अपनी कार में बैठकर लौट गया। आज वह भी बड़ा गमगीन था। आज उसने कमला का जो रूप देखा था, वह कुछ चिंतित लग रहा था।"

उन्नीस

"मनोहर, कमला ने वह जमीन सांवरिया के नाम लिख दी, जिस जमीन पर कभी मेरी एक झोंपड़ी हुआ करती थी। अमर तथा अरुण ने कमला को बताया कि सांवरिया ने जमीन की कीमत केवल पांच लाख दी है जबकि सांवरिया ने उन्हें छह लाख रुपए दिए थे। दोनों ने मिल कर सांवरिया को इसके लिए राजी कर लिया था कि वह मां को सच्चाई कभी नहीं बताएगा। लेकिन, पट्टे पर जमीन की कीमत सिर्फ डेढ़ लाख दिखलाई गई। आज अमर और अरुण बहुत खुश थे। उनसे भी ज्यादा प्रसन्न सांवरिया था, पर वह अपनी प्रसन्नता लोगों पर प्रकट नहीं होने दे रहा था। कागजात पर हस्ताक्षर कर देने के बाद कमला ने सांवरिया से विनयपूर्वक कहा —बेटा, अब मेरी जमीन आज से तुम्हारी हो गयी। उस जमीन पर अब मेरा कोई अधिकार नहीं। मगर, मेरी इच्छा है कि एक बार उस जमीन पर मैं जाऊं। तुम्हारी आज्ञा हो तो एक बार मैं वहां हो लूं?

—मांजी, वह जगह आज भी आपकी ही है। फर्क केवल इतना पड़ा है कि आज आपने उसे मेरे नाम लिख दिया है याने अपने बेटे के नाम। आप वहां एक बार क्यों, हजार बार जाइये। वहां जाने से आपको कोई नहीं रोक सकता।—सांवरिया ने अपनत्व प्रदर्शित करते हुए कहा।

कमला ने सांवरिया की ओर एक अजीब दृष्टि से देखा। शायद वह सांवरिया को अभी भी समझने का प्रयास कर रही थी।

आज कमला ने वही साड़ी पहनी थी, जो साड़ी उसने अपनी शादी में पहनी थी। लाल बनारसी साड़ी। चांदी के तारों से कढ़े हुए बड़े-बड़े फूल। कमला ने इस साड़ी को बहुत जतन से संभाल कर रखा था। इस साड़ी में कमला आज कुछ अटपटी-सी लग रही थी; क्योंकि साड़ी में सलवटों की भरमार थी। पर, क्यों तो इस साड़ी को पहन कर वह बहुत खुश नजर आ रही थी।

कार की तरफ आने का संकेत करते हुए सांवरिया ने कहा—आइए, मांजी।

ड्राइवर ने कार का पिछला दरवाजा खोल दिया। कमला पीछे की सीट पर आकर बैठ गई। अगल-बगल अमर और अरुण भी बैठ गए। सांवरिया ड्राइवर की बगल में बैठ गया।

गाड़ी चल पड़ी।

भैंसा टोली में आकर कार मेरे ध्वस्त घर के सामने रुक गई।

कमला कार से निकली। अपने खंडहर बने घर मे वह गई। चारों ओर मिट्टी फैली हुई थी। केवल पेड़-पौधे अभी भी अपने स्थान पर खड़े थे। कहीं-कहीं पुटुस की झाड़ियां उग आई थी। कमला फैली मिट्टी पर घूमने लगी। कही उसे चूड़ी के टुकडे मिले। कही उसे कप-प्लेट के टुकड़े दिखाई पड़े। कही उसे किताब की केवल ऊपरी जिल्द मिली। कहीं उसे जले हुए कोयले दिखाई पड़े। कही उसे गमले के टुकड़े नजर आए। टूटे खपड़े तो पूरे आगन में दिखाई पड़ रहे थे। बांसों और लकड़ियों को एक कोने में जमा कर दिया गया था।

जमीन पर चलते हुए कमला यह अनुमान लगा रही थी कि उसका कमरा कहा था···अमर कहा सोता था···अरुण का कमरा कहां था···मैं कहां पढ़ा-लिखा करता था···वह कहां खाना पकाती थी···बच्चे जब छोटे-छोटे थे तब वे कहां खेला करते थे···

कुएं मे उसने झाक कर देखा। पानी बेहद गंदा हो गया था। वहां मेंढक तैरते नजर आए। पानी मे एक मरा हुआ चूहा पता नही कब से पड़ा-पड़ा गल रहा था। कुएं की भीतरी दीवारो पर कई प्रकार के पौधे उग आए थे।

वहां सब कुछ अस्त-व्यस्त हो गया था।

केवल तुलसी चौरा सुरक्षित नजर आ रहा था। तुलसी को देखकर कमला एकाएक हर्षित हो उठी। ऐसा लगा कि उसकी आंखें तुलसीजी को ही खोज रही थी। तुलसी के पौधे के आस-पास फैली घास-पात को साफ कर कमला वहा जमीन पर बैठ गई। उसने अपने दोनों हाथ जोड़ लिए। अपनी दोनों आंखो को बंद कर उसने प्रार्थना की—मा तुलसी, यहां तो सब कुछ उजड़ गया, पर आप तो अपनी जगह पर ज्यों-की-त्यो बनी हैं। मा, आपने मुझ अभागिन को क्यों भुला दिया? जिस प्रकार आप इस आंगन की तुलसी हैं, उसी प्रकार मैं भी तो इसी आंगन की तुलसी हूं। मा, अब मेरा सब कुछ छिन गया। अब मेरे पास कुछ भी नही। बोलो मां, अब मैं कहां जाऊं? मैं अब कहीं नही जाऊंगी। मैं भी यही रहूंगी—इसी आंगन मे और आपकी ही शरण में। मा, मैं आ रही हूं।

और कमला लुढ़क गई। उसके जुड़े हुए दोनों हाथ तुलसी चौरा पर टिक गए।

कमला को गिरते देख सांवरिया, अमर और अरुण तीनो एक साथ दौड़ पड़े।

वहां केवल कमला का शरीर बच रहा था। तीनों ने कमला को हिला-डुलाकर देखा, उसे जगाने की कोशिश की। पर, कमला वहां होती तो जगती।

सभी रो पड़े।"

मनोहर को ऐसा प्रतीत हुआ कि समीप में कोई रो रहा है। उसने चारों ओर नजर घुमाकर देखा। कोई भी नजर नहीं आया। एकाएक उसे कृष्णकांतजी की भारी आवाज सुनाई पड़ी—"मनोहर, मैं ही रो पड़ा था। अब कुछ देर के लिए रुक जाओ। मैं जरा रुककर बोलना चाहता हूं।"

"ठीक है। मैं अपना टेप-रेकार्डर बंद कर देता हूं।"—मनोहर ने टेप रेकार्डर बंद कर दिया।

वह कुछ सोचने लग गया।

"मनोहर, टेप-रेकार्डर चालू कर लो। अब मैं बोलना चाहता हूं।"—कृष्णकांतजी की आवाज सुनाई पड़ी।

"जी, अभी चालू करता हूं। लीजिए, यह चालू हो गया। आप अब बोल सकते हैं।"—मनोहर ने ऊपर पेड़ की ओर देखते हुए कहा।

एक लंबी सांस खींचने की आवाज उभरी। इसके बाद कृष्णकांतजी का स्वर सुनाई पड़ने लग गया—"मनोहर, किसी ने भी नहीं सोचा था कि कमला की मौत इस प्रकार होगी। सांवरिया, अमर तथा अरुण ने कमला को जमीन पर से उठाना चाहा। ड्राइवर ने आगे बढ़कर सबको ऐसा करने से रोका और कहा—साहब, माजी को यहां से मत उठाइए। उनकी शायद यही इच्छा थी कि उनकी मौत इसी जमीन पर हो। वह इस मिट्टी में समा गई हैं। आइए, अब यहीं से उनका जनाजा उठवाने का इंतजाम कीजिए।

यह बात तीनों को जंच गई।

कुछ ही क्षणों में मुहल्ले भर में कमला के मरने की खबर हवा की तरह फैल गई।

मुहल्ले की औरतें जमा होने लगीं। लोगों का आना बढ़ता ही गया।

औरतों का रोना-गाना शुरू हो गया।

संगीता और विनीता की ससुरालें काफी दूर थीं, अतः उन्हें बुलवाना किसी भी स्थिति में संभव नहीं था।

मुहल्ले की औरतों ने ही मिलकर कमला को स्नान करवाया। उसे तैयार किया।

जिस घर से मेरा जनाजा उठा था, उसी घर के खंडहर से कमला का जनाजा भी निकला। जिस समय अर्थी उठाई गई, लोगों को ऐसा लगा कि वहां की जमीन अर्थी को अपनी तरफ खींच रही थी।

शव-यात्रा में बहुत कम लोग थे।

अर्थी को सबसे पहले अमर, अरुण, सांवरिया और उसकी कार के ड्राइवर ने कंधा दिया। आज जनाजे को कंधा देनेवाले जल्दी-जल्दी कंधा नहीं बदल रहे थे; क्योंकि वहां कोई कैमरा लिए तसवीरें नहीं खींच रहा था।

जहां मेरा दाह-संस्कार किया गया था, वहीं पर कमला की चिता भी सजाई गई।

अमर ने मुखाग्नि दी।

चिता जल उठी। कमला का शरीर जलने लगा। चिता की ज्वालाएं ऊपर की ओर उठने लगीं। आस-पास चिनगारियां छिटकने लग गईं।

लोग चिता से दूर हट गए।

कुछ लोग आपस में बातें कर रहे थे—

एक—दो वर्ष भी पूरे नहीं हुए कि कृष्णकांतजी की पत्नी भी चल बसीं।

दो—अब सब कुछ खत्म हो गया।

तीन—खत्म हो गया कि खत्म कर दिया गया।

एक—हां, आपने बिलकुल ठीक कहा है।

तीन—हर आदमी को यह मालूम है कि अमर और अरुण ने अपनी मां पर जोर डाला और मां को कागजात पर सही करना पड़ा। जमीन की रजिस्ट्री करके वह अपनी जमीन पर आती है और वहीं पर उसका दम निकल जाता है—यह क्या बताता है?

एक—बिलकुल साफ है कि यह हार्ट-फेल का केस है।

दो—लगता है कि बुढ़िया को सदमा बर्दाश्त नहीं हो सका।

तीन—सांवरिया ने अमर और अरुण को अपने साथ मिलाकर जो धोखा किया है, वह सांवरिया को कभी नहीं करना चाहिए था।

एक—व्यापारी अगर व्यापार नहीं करेगा तो आखिर क्या करेगा?

दो—किसी की मजबूरी का नाजायज फायदा उठाना व्यापार नहीं माना जा सकता।

एक—दुनिया में मजबूरी है, इसीलिए तो यह दुनिया चल भी रही है। लोग मजबूर न हों तो धर्म, परमार्थ, सेवा वगैरह के नाम पर तरह-तरह के धंधे कैसे चलेंगे?

तीन—चाहे कोई कुछ भी कहे, बुढ़िया को मौत लाजवाब मिली। न तो उसने कष्ट भोगा और न किसी को कोई कष्ट ही दिया। बस लुढ़क गई। किसी को कुछ पता भी नहीं चल सका।

दो—मगर, यह जमीन सांवरिया को कभी नहीं फलेगी।

सभी रो पड़े।"

मनोहर को ऐसा प्रतीत हुआ कि समीप में कोई रो रहा है। उसने चारों ओर नजर घुमाकर देखा। कोई भी नजर नही आया। एकाएक उसे [illegible] था। [illegible] ने टेप [illegible]

वह कुछ सोचने लग गया।

"मनोहर, टेप-रेकार्डर चालू कर लो। अब मैं बोलना चाहता हू।"—कृष्णकांतजी की आवाज सुनाई पड़ी।

"जी, अभी चालू करता हूं। लीजिए, यह चालू हो गया। आप अब बोल सकते हैं।"—मनोहर ने ऊपर पेड़ की ओर देखते हुए कहा।

एक लंबी सांस खींचने की आवाज उभरी। इसके बाद कृष्णकांतजी का स्वर सुनाई पड़ने लग गया—"मनोहर, किसी ने भी नहीं सोचा था कि कमला की मौत इस प्रकार होगी। सांवरिया, अमर तथा अरुण ने कमला को जमीन पर से उठाना चाहा। ड्राइवर ने आगे बढ़कर सबको ऐसा करने से रोका और कहा—साहब, माजी को यहां से मत उठाइए। उनकी शायद यही इच्छा थी कि उनकी मौत इसी जमीन पर हो। वह इस मिट्टी में समा गई हैं। आइए, अब यहीं से उनका जनाजा उठवाने का इंतजाम कीजिए।

यह बात तीनों को जच गई।

कुछ ही क्षणों मे मुहल्ले भर मे कमला के मरने की खबर हवा की तरह फैल गई।

[illegible]

मुहल्ले की औरतों ने ही मिलकर कमला को स्नान करवाया। उसे तैयार किया।

जिस घर से मेरा जनाजा उठा था, उसी घर के खंडहर से कमला का जनाजा भी निकला। जिस समय अर्थी उठाई गई, लोगों को ऐसा लगा कि वहां की जमीन अर्थी को अपनी तरफ खींच रही थी।

शव-यात्रा मे बहुत कम लोग थे।

अर्थी को सबसे पहले अमर, अरुण, सांवरिया और उसकी कार के ड्राइवर ने कंधा दिया। आज जनाजे को कंधा देनेवाले जल्दी-जल्दी कंधा नही बदल रहे थे; क्योंकि वहां कोई कैमरा लिए तसवीरें नही खींच रहा था।

जहा मेरा दाह-संस्कार किया गया था, वही पर कमला की चिता भी सजाई गई।

अमर ने मुखाग्नि दी।

चिता जल उठी। कमला का शरीर जलने लगा। चिता की ज्वालाएं ऊपर की ओर उठने लगी। आस-पास चिनगारियां छिटकने लग गई।

लोग चिता से दूर हट गए।

कुछ लोग आपस मे बातें कर रहे थे—

एक—दो वर्ष भी पूरे नही हुए कि कृष्णकांतजी की पत्नी भी चल बसी।

दो—अब सब कुछ खत्म हो गया।

तीन—खत्म हो गया कि खत्म कर दिया गया।

एक—हां, आपने बिलकुल ठीक कहा है।

तीन—हर आदमी को यह मालूम है कि अमर और अरुण ने अपनी मां पर जोर डाला और मां को कागजात पर सही करना पड़ा। जमीन की रजिस्ट्री करके वह अपनी जमीन पर आती है और वही पर उसका दम निकल जाता है—यह क्या बताता है?

एक—बिलकुल साफ है कि यह हार्ट-फेल का केस है।

दो—लगता है कि बुढ़िया को सदमा बर्दाश्त नही हो सका।

तीन—सांवरिया ने अमर और अरुण को अपने साथ मिलाकर जो धोखा किया है, वह सांवरिया को कभी नही करना चाहिए था।

एक—व्यापारी अगर व्यापार नहीं करेगा तो आखिर क्या करेगा?

दो—किसी की मजबूरी का नाजायज फायदा उठाना व्यापार नहीं माना जा सकता।

एक—दुनिया में मजबूरी है, इसीलिए तो यह दुनिया चल भी रही है। लोग मजबूर न हों तो धर्म, परमार्थ, सेवा वगैरह के नाम पर तरह-तरह के धंधे कैसे चलेंगे?

तीन—चाहे कोई कुछ भी कहे, बुढ़िया को मौत लाजवाब मिली। न तो उसने कष्ट भोगा और न किसी को कोई कष्ट ही दिया। बस लुढ़क गई। किसी को कुछ पता भी नहीं चल सका।

दो—मगर, यह जमीन सांवरिया को कभी नही फलेगी।

एक—क्यों ?

दो—क्योंकि उसने अपने दोस्तों के साथ दगा किया है।

तीन—तुम लोग कहां की बातें कर रहे हो? यह जमीन सांवरिया को खूब फलेगी। बस, बुढ़िया का श्राद्ध हो जाने दो फिर देखना कि इस जमीन पर क्या होता है? वहां एक बहुमंजिली इमारत बनेगी···बहुत ही सुंदर···नीचे बाजार बनेगा···सांवरिया यहां से लाखों रुपए केवल पगड़ी में पैदा करेगा ऊपर बड़े-बड़े ऑफिस खुलेंगे···देखना, इस इमारत को बनाने में सांवरिया पानी की तरह पैसे बहाएगा···लोग देखते रह जाएंगे···फिर लोगों को यह भूलने में जरा भी देर नहीं लगेगी कि इस जमीन पर कृष्णकांत नाम का कोई लेखक भी रहता था···उस जमीन पर कृष्णकांतजी की कोई निशानी भी नहीं बचेगी···बेचारा कृष्णकांत अपनी जड़ से ही उखड़ गया

एक—अरे भाई, साफ क्यों नहीं कहते कि सांवरिया ने ही कृष्णकांत के परिवार को जड़-मूल से ही उखाड़कर फेंक दिया भैंसा टोली से···

मनोहर, उस आदमी की यह बात मेरे सीने में तीर-सी चुभ गयी। सचमुच, मुझे अपनी जड़ से उखाड़कर फेंक दिया गया। अब जो कोई भी कृष्णकांत को भैंसा टोली में खोजने आएगा, उसे वहां कृष्णकांत का घर बतानेवाला भी कोई नहीं मिलेगा; क्योंकि भैंसा टोली में अब कृष्णकांत का कुछ भी नहीं है···उसी गली में अब मेरा कोई अवशेष नहीं है···जो गली कभी मेरे रहने के कारण प्रसिद्ध थी···उस गली में लोगों को अब मेरी कोई निशानी भी नहीं मिलेगी···यह टीस मेरी आत्मा को बराबर तड़पाती रहती है···मेरी आत्मा इस टीस से आज भी पीड़ित है···"

बीस

"मनोहर, तेरह फरवरी का दिन फिर आ गया। उस दिन मेरी बासठवीं वर्षगांठ थी। मुझे विश्वास था कि इस दिन कई आयोजन किए जाएंगे, पर ऐसा कुछ विशेष नहीं हुआ। मुरली मनोहर ने जो कृष्णकांत स्मारक समिति बनाई थी, उसके सदस्य आज कहीं दिखलाई नहीं पड़ रहे थे।"

"ऐसा क्यों?"—मनोहर ने कारण जानना चाहा।

"हुआ यह कि मेरे स्मारक के नाम पर इन्हें जो जमीन मिलने वाली

थी, उस जमीन को लेकर इन लोगों के बीच झगडा शुरू हो गया।"

"कैसा झगडा ?"—मनोहर ने फिर सवाल किया।

"लो, उनके झगड़े का हाल भी सुन लो। यह झगडा दस फरवरी को याने मेरी जयन्ती के ठीक तीनों दिनों के पहले हुआ। अच्छा अब झगडे का हाल सुनो—

मुरली मनोहर के मकान के उसी तहखाने मे सभी जमा थे, जहाँ बैठकर इन लोगो ने मेरे नाम पर एक स्मारक समिति का गठन करने का स्वांग रचा था।

ज्ञानप्रकाश चोपड़ा ने बड़े आवेश मे टेबुल पर मुक्का मारते हुए कहा—मुरली मनोहरजी, आज इस बात का फैसला हो जाना चाहिए कि स्मारक के लिए हमे जो जमीन मिल सकती है, उसका बंटवारा हम लोगो के बीच कैसे होगा ?

जयगोविन्द वर्मा, आई० ए० एस० [सेवामुक्त] ने भी जोर-जोर से बोलना शुरू कर दिया—इस काम मे मैं सबसे ज्यादा मेहनत कर रहा हूं। पर, अब मुझे लगता है कि कुछ लोगो की नीयत साफ नही है। ये लोग अकेले ही सब कुछ हड़प लेना चाहते हैं।

डॉ० श्यामजी भी भरे हुए बैठे थे। वह उबल पड़े—आज फैसला हो ही जाना चाहिए। आज फैसला होकर रहेगा।

मुरली मनोहर ने सबको शांत करते हुए निवेदन किया—आप लोग किसके खिलाफ बोल रहे हैं ? मैं कुछ भी समझ नही पा रहा हूं। अगर किसी के मन मे किसी प्रकार का शक है तो हम लोग आज यह तय कर ही लें कि किसे क्या मिलनेवाला है ? डॉक्टर साहब, सबसे पहले आप ही बोलिए कि आपको क्या चाहिए ?

डॉ० श्यामजी ने प्रस्तावित स्मारक का नक्शा सबके सामने टेबुल पर फैला दिया और बताया—यह बाजार जो चतुर्भुज के रूप मे बननेवाला है, इसमे मुझे एक भुजा की पूरी जगह चाहिए।

गोपालजी ने बीच मे ही टपकते हुए पूछा—आप क्या कहना चाहते हैं, जरा साफ-साफ समझाकर कहिए।

डॉक्टर साहब ने आगे कहा—मैं जो बोल रहा हू, उसका अर्थ बड़ा साफ है। एक भुजा मे जितनी भी दूकानें बनेंगी, उन सबकी पगड़ी मैं लूंगा। ऊपर मैं दो मंजिली इमारत बनवाऊंगा, जिसमें मेरा नया सेवा-सदन होगा।

जयगोविन्द वर्मा ने कटाक्ष करते हुए कहा—याने बिना लगाए आप जमीन भी चाहते हैं और सेवा-सदन भी। कमाल

साहब, आप चुप क्यों बैठे हैं ? आप भी अपनी इच्छा बता ही दीजिए।

चोपड़ा तो पहले से ही तैयार बैठा था। उसने बड़ी बेशर्मी के साथ कहा—मैं भी एक बाजू की जमीन पूरी लूंगा। नीचे जो दूकानें बनेंगी, उनकी पगड़ी पर मेरा पूरा हक होगा। मैं ऊपर तीन मंजिली बिल्डिंग बनवाऊंगा, जिसमें एक शानदार होटल होगा।

बजरंग पोद्दार से चुप नहीं बैठा गया। वह तो पहले से ही जल रहा था। वह गरज पड़ा—दो तरफ की जमीनों पर तो आप दोनों महानुभावों ने अपना कब्जा कर ही लिया। अब बचीं दो तरफ की जमीन और हम हिस्सेदार बच गए चार। याने हमें आधी-आधी भुजा की जमीन पर ही संतोष करना पड़ेगा। क्यों यही बात है न ? लगता है कि दुनिया में दो चालाक ही बच गए हैं—चोपड़ा साहब और डॉक्टर साहब !

चोपड़ा और डॉक्टर साहब कुछ जवाब देने के लिए उठे ही थे कि मुरली मनोहर ने उन्हें चुप लगा लेने का इशारा कर दिया।

जगगोविन्द वर्मा ने बड़े तैश में कह दिया—इसका मतलब है कि किसी को कुछ भी नहीं मिलेगा।

—क्यों ?—मुरली मनोहर ने बड़े आश्चर्य से पूछा।

—पहले दिन यह बात तय हुई थी कि सबको बराबर का हिस्सा मिलेगा। मैंने अपने मन में यह सोचा था कि समय पर मैं आप लोगों को यह बताऊंगा कि इस काम में सबसे बड़ी भूमिका मेरी है इसलिए एक भुजा की पूरी जमीन मुझे अवश्य मिलनी चाहिए। मगर, मैं तो यह देख रहा कि दूसरे लोग मुझसे कहीं ज्यादा होशियार हैं। वे बैठे-बैठे सब कुछ हड़प लेने को तैयार नजर आ रहे हैं।

चोपड़ा यह सुनते ही आपे से बाहर हो गया। उसने आवेश में कहा—वर्माजी, आपको ऐसा बोलने का कोई हक नहीं है। अब तक इस काम में जितना भी खर्च हुआ है, वह मेरी जेब से गया है। आप मेरे ही रुपए से घूम-घूमकर काम करवा रहे हैं। सच-सच बताइए, क्या अब तक आपने इस काम पर अपने घर का एक पैसा भी खर्च किया है ?

डॉ० श्यामजी ने भी गुस्से में कांपते हुए कहा—आपको पता होना चाहिए कि सचिवालय में मेरा अपना सहोदर भाई आयुक्त के पद पर है। मैं जिस दिन भी चाहूंगा, आपकी स्मारक समिति वाली फाइल उड़वा दूंगा और आप लोग यहां बैठे-बैठे खिचड़ी पकाते रह जाएंगे।

गोपालजी को लगा कि जब सभी अपनी-अपनी बघार रहे हैं, तो वह क्यों चुप बैठें ? उसने भी क्रोध के साथ कहा—आप लोग अच्छी तरह जान लीजिए कि इस काम में अड़ंगा डालना मेरे बाएं हाथ का खेल है। जहां मैंने

विधान सभा में इस मामले को उठाया और विधान सभा को बता दिया कि कृष्णकांत जनसंघी और इंदिरा-विरोधी थे—आप लोगों की यह योजना धरी-की-धरी रह जाएगी। आप लोगों को यह अच्छी तरह मालूम होना चाहिए कि अंतिम स्वीकृति मंत्रिमंडल को ही देनी है। यह स्वीकृति केवल मैं प्राप्त कर सकता हूं। यह काम दूसरा कोई नहीं कर सकता, इसलिए जरा आप लोग होश से काम लें, तैश से काम नहीं लें।

यह सुनकर सभी जरा ठंडे पड़ गए। हर आदमी एक-दूसरे की तरफ प्रश्न भरी दृष्टि से ताकने लगा।

मुरली मनोहर ने धीरे-धीरे बोलना शुरू किया—मामला बड़ा नाजुक है। इस पर हम लोगों को जरा सावधानी से सोचना चाहिए। काम काफी आगे बढ़ चुका है। अब तक हर अधिकारी ने फाइल पर पक्ष में ही लिखा है। कुछ ही दिनों के बाद यह मामला मुख्य मंत्री एवं मंत्रिमंडल की सहमति के लिए पेश किया जानेवाला है। यदि हम लोगों ने कोई गलत कदम उठाया तो हमारी नाव किनारे पर आकर डूब भी सकती है।

चोपड़ा ने बड़ी मीठी आवाज में कहा—मुरली मनोहरजी, ऐसा कीजिए कि एक बैठक और किसी दिन बुला लीजिए।

मुरली मनोहर ने तपाक् से कहा—मगर तेरह फरवरी का दिन तो दो दिनों के बाद ही है। इस दिन कृष्णकांतजी की वर्षगांठ पड़ेगी। इस दिन यदि हम लोगों ने कुछ नहीं किया तो लोग हमें गलत समझ सकते हैं। हो सकता है कि कुछ लोग हमारे विरोध में प्रचार भी करना शुरू कर दें।

जयगोविंद वर्मा का क्रोध अभी भी शांत नहीं हुआ था। उन्होंने कांपते हुए कहा—नहीं, अब कोई काम नहीं होगा। जब हम लोगों के बीच यह तय हो जाएगा कि किसे क्या मिलेगा, तभी आगे का कोई काम होगा। क्यों बजरंगजी?

बजरंग पोद्दार ने कुर्सी से उचककर कहा—हां, यह बात सोलहो आने ठीक है। पहले फैसला फिर अगला काम।

गोपालजी भी उठकर खड़े हो गए।

मुरली मनोहर ने उन्हें बिठाने का भरसक प्रयास किया, पर गोपालजी नहीं बैठे। गोपालजी को देखकर दूसरे लोग भी अपनी-अपनी कुर्सियों से उठ खड़े हुए।

मुरली मनोहर ने डॉ० श्यामजी और चोपड़ा की ओर याचनाभरी दृष्टि से देखा। चोपड़ा ने कह दिया—अब किसी दूसरे ही दिन बैठना ठीक होगा। आज हर आदमी का मूड खराब है।

डॉ० श्यामजी ने भी सहमति में अपना माथा हिला दिया। दोनों कमरे

के बाहर निकल गए। बाद में दूसरे लोगों ने भी वैसा ही किया।

कमरे में केवल मुरली मनोहर बच गए। वह कुर्सी पर बैठे-बैठे अपना सिर धुनने लगे।"

"यह तो एक-न-एक दिन होना ही था।"—मनोहर ने हँसते हुए कहा।

"मनोहर, अब मैं तुम्हें उस समारोह के बारे में बताने जा रहा हूं, जिस समारोह से यह आशा जगी है कि यह नगर शायद मुझे नहीं भुला पाएगा। प्रत्येक तेरह फरवरी को जब-जब दैनिक समाचार के द्वारा किसी लेखक को कृष्णकांत पुरस्कार से सम्मानित किया जाएगा, तो यह शहर और इस शहर के लोग मुझे भी याद करेंगे ही।"

"हां, यह सच है।"—मनोहर ने समर्थन किया।

"लो, अब मैं तुम्हें पुरस्कार समारोह का पूरा हाल सुनाता हूं—

निश्चित समय पर समारोह प्रारंभ हुआ। मंच पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हुआ एक बैनर टंगा था—प्रथम कृष्णकांत पुरस्कार वितरण समारोह। नीचे लिखा था—आयोजक दैनिक समाचार। मंच के एक कोने में मेरा आदमकद तैलचित्र रखा हुआ था, जिसके नीचे सुनहरे अक्षरों में लिखा था—अमर साहित्यकार। चित्र के सामने अगरबत्तियां जल रही थीं। मंच पर अध्यक्ष के रूप में हिंदी के सुप्रसिद्ध विदेशी विद्वान् डॉ० कैली बैठे हुए थे। मुख्य अतिथि थे—दक्षिण भारत के प्रख्यात हिंदी लेखक—दिवाकरन्। आज मैंने पहली बार देखा कि इस साहित्यिक आयोजन में हॉल खचाखच भरा हुआ था। कुछ लोग तो जगह नहीं मिलने के कारण पीछे खड़े भी थे।

पांच कुमारिकाओं ने निराला की सरस्वती-वन्दना—वर दे! वीणा-वादिनि! वर दे!—का सस्वर गायन प्रस्तुत किया। इस वन्दना को सुनते हुए ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में यह एक सारस्वत आयोजन है।"

"आपको ऐसा अनुभव क्यों हुआ?"—मनोहर ने एक टेढ़ा सवाल पूछ लिया।

"मनोहर, ऐसा मुझे इसलिए लगा, क्योंकि मंच पर कोई मंत्री या अभिनेता नहीं बैठा था। वहां जो भी थे, वे किसी-न-किसी रूप में सरस्वती के आराधक ही थे।"

"तब तो आपने ठीक ही कहा।"—मनोहर ने कहा।

"सरस्वती-वन्दना के पश्चात् मुख्य अतिथि ने मेरे तैल-चित्र को माला पहनाई। ऐसा करते हुए उनकी आंखें क्यों तो गीली हो आईं।

इसके बाद दैनिक समाचार के प्रबन्ध निदेशक का भाषण हुआ—

अध्यक्ष महोदय, मुख्य अतिथिजी, उपस्थित देवियो और महानुभावो, पिछले वर्ष आज के ही दिन मैंने दैनिक समाचार की ओर से एक घोषणा की थी कि दैनिक समाचार कृष्णकांतजी की स्मृति मे प्रति वर्ष एक पुरस्कार देगा। पुरस्कार के रूप मे डेढ हजार रुपए नकद दिए जाएंगे। यह पुरस्कार किसी साहित्यकार को उसकी श्रेष्ठ रचना के लिए दिया जाएगा। मेरे लिए और दैनिक समाचार-परिवार के लिए यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि हम अपना वचन निभाने मे सफल हो सके हैं। पिछले वर्ष कुछ लोगो ने यह घोषणा की थी कि कृष्णकांतजी की स्मृति मे एक भव्य स्मारक का निर्माण वे ल [illegible] संस्ट [illegible] मे [illegible] कि उसके द्वारा किया जाना संभव है। मेरी आशका निर्मूल नही थी। जो लोग कृष्णकांतजी के नाम पर भव्य स्मारक बनाने के पक्षधर और नियामक थे, आज वे लोग यहा नजर नहीं आ रहे हैं।

लोग हंस पड़ते हैं।

—एक काम मैंने जान-बूझकर किया है। मैंने इस आयोजन में किसी नेता या अभिनेता को नही बुलाया है।

लोग हर्ष के साथ तालियां बजाते हैं।

—मैं आपको यह आश्वासन भी देता हूं कि भविष्य में भी, इस आयोजन मे मैं किसी नेता या अभिनेता को कभी नही आमंत्रित करूंगा।

लोग पुनः तालियां बजाते हैं।

—यह सारस्वत पर्व प्रत्येक तेरह फरवरी को हर वर्ष मनाया जाएगा। जैसे-जैसे दैनिक समाचार की आर्थिक स्थिति सुदृढ होती जाएगी, पुरस्कार की राशि भी हम बढाते जाएंगे।

श्रोताओं ने करतल-ध्वनि की।

पुरस्कार समिति के एक सदस्य डॉक्टर नरेन्द्र कुमार का मंच पर आगमन हुआ। उन्होंने कहा—आदरणीय अध्यक्ष महोदय, मुख्य अतिथिजी, दैनिक समाचार के प्रबन्ध निदेशक प्रकाशचंदजी, सम्पादक ज्ञानप्रकाशजी एवं उपस्थित देवियो और सज्जनो! पुरस्कार समिति की ओर से अत्यत प्रसन्नता के साथ मैं यह घोषणा करता हू कि आज कृष्णकांत पुरस्कार श्री सत्यकेतुजी को दिया जानेवाला है। मैं सत्यकेतुजी से यह अनुरोध करता हूं कि वह मंच पर आने की कृपा करें।

सत्यकेतु उठा। हॉल मे तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी। मंच पर आकर सबसे पहले सत्यकेतु ने हॉल मे बैठे लोगों का अभिवादन किया।

इसके बाद वह मंच पर बैठ गया।

डॉक्टर नरेन्द्र कुमार ने संक्षेप में यह बताया कि इन विशेषताओं के कारण सत्यकेतु के एक उपन्यास को पुरस्कार समिति ने पुरस्कार के योग्य माना है। उन्होंने आगे कहा—अब मैं श्री सत्यकेतुजी से यह आग्रह करता हूं कि वह मुख्य अतिथिजी के हाथों पुरस्कार प्राप्त करने की कृपा करें।

सत्यकेतु उठा। हॉल एक बार फिर तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। मुख्य अतिथि महोदय ने सत्यकेतु को एक दुशाला ओढ़ाकर पंद्रह सौ रुपये के पुरस्कार से सम्मानित किया। उन्होंने एक प्रशस्ति-पत्र भी प्रदान किया।

पुरस्कार ग्रहण कर सत्यकेतु ने हॉल में बैठे लोगों का एक बार फिर अभिवादन किया। लगभग एक मिनट तक लोग तालियां बजाते रहे।

सत्यकेतु अपनी जगह पर बैठ गया।

मुख्य अतिथि महोदय ने एक छोटा-सा भाषण दिया—देवियो और सज्जनो, आप लोगों के बीच आकर मुझे वास्तव में हार्दिक प्रसन्नता मिली है। मैं यह ईमानदारी के साथ कह सकता हूं कि इस प्रकार का समारोह मैं पहली बार देख रहा हूं। इस समारोह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहां मंच पर आप किसी भी राजनीतिज्ञ को नहीं देख रहे हैं। सच्ची बात तो यह है कि साहित्य से नेताओं को क्या लेना-देना है? फिर भी आज हमारे देश में दो प्रकार के लोगों का ही सर्वाधिक सम्मान है। एक है नेता और दूसरा है अभिनेता। इस समारोह की दूसरी विशेषता यह है कि यह आयोजन किसी साहित्यकार की स्मृति में आहूत है। तीसरी विशेषता है कि एक दैनिक समाचार पत्र ने इस पुरस्कार का आयोजन किया है। ऐसा कर दैनिक समाचार ने पूरे देश के सामने एक अनुकरणीय दृष्टान्त पेश किया है। इस पुरस्कार के कारण इस नगर के लोग प्रति वर्ष कृष्णकांतजी जैसे देश के एक महान् साहित्यकार को जहां स्मरण करेंगे, वहां इससे नए लेखकों को यह प्रेरणा भी मिलेगी कि उन्हें कृष्णकांतजी की तरह ही सत्साहित्य लिखकर अपने देश की सेवा करनी है और मानवता को एक नया संदेश देना है।

श्रोताओं ने तालियां बजानी शुरू कर दीं।

—मैंने अनेक सरकारी और साहित्यिक आयोजन देखे हैं। मगर, जो बात इस समारोह में देखने को मिल रही है, वह अपने आप में अनूठी है। आपने यह पंक्ति जरूर सुनी होगी—शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले। लेकिन यह देश शहीदों को बहुत तेजी से भूल गया। अब तो मेले लगते हैं नेताओं के आने पर या फिर अभिनेताओं के आने पर। लेकिन,

इस नगर के लोगों ने देश को आज एक सार्थक नारा दिया है—यहां हर वर्ष होगा समारोह, कृष्णकांत तेरी याद में।—यह समारोह प्रति वर्ष देश को यह याद दिलाता रहेगा कि साहित्यकारों के प्रति उसका क्या दायित्व है।

लोग हर्ष-ध्वनि करते हैं।

—इस समारोह मे आकर ऐसा लग रहा है कि यहां किसी एक लेखक को सम्मानित नही किया गया है, बल्कि एक साहित्यकार के बहाने देश के सभी साहित्यकारों का सम्मान किया गया है। इस दृष्टि से आज मैं स्वयं अपने को भी सम्मानित अनुभूत कर रहा हू।

मुख्य अतिथि के भाषण के बाद सत्यकेतु ने पुरस्कार प्रदान करने के लिए दैनिक समाचार के प्रति आभार प्रदर्शित किया और कहा—कृष्णकांतजी मेरे आदर्श रहे हैं और मैं उन्ही के बताए मार्ग पर चलने के लिए प्रतिबद्ध हूं, यह जानते हुए भी कि एक आस्थावान साहित्यकार के लिए यह दुनिया एक बहुत बडी चुनौती है और यहां साहित्यकार बने रहना आज सबसे कठिन कार्य है। यह सुनकर कुछ उत्साही लोगों ने नारा लगाना शुरू कर दिया—सत्यकेतु जिन्दाबाद, सत्यकेतु जिन्दाबाद···

अंत में अध्यक्षीय भाषण हुआ। इसके बाद दैनिक समाचार के सम्पादक ज्ञानप्रकाश ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।

समारोह के बाद लोग अपने-अपने घरों को चले गये। पर, मुझे ऐसा लग रहा था कि हॉल के कोने-कोने मे मेरा नाम गूंज रहा है—कृष्णकांत··· कृष्णकांत···कृष्णकांत···कृष्णकांत···कृष्णकांत, अब तू अमर हो गया है··· तू अमर रहेगा···अब तू मर कर अमर बना रहेगा···, हां मनोहर, अब सचमुच मुझे भी यह विश्वास हो चला है कि यह नगर और अपना देश मुझे कभी नही भूल पाएगा। मेरा परिवार बिखर गया, मेरी झोपड़ी छिन गयी, मेरी कमला चली गयी, मेरे बेटे नालायक निकल गये—इन बातों से मेरी आत्मा को गहरी ठेस पहुंचती थी, पर अब मेरी आत्मा को कोई कष्ट नही होगा। आज के समारोह ने मेरे भीतर एक नए विश्वास को जन्म दिया है।"

"कृष्णकांतजी, मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूं।"—मनोहर ने बड़े संकोच के साथ पूछा।

"पूछो मनोहर, जरूर पूछो।"

"अभी-अभी आपने अमर और अरुण के लिए केवल इतना कि आपके दोनों बेटे नालायक निकल गये। आपने ऐसा क्यों कहा। मनोहर ने प्रश्न किया।

"मनोहर, तुमने यह पूछकर मेरी आत्मा को एक बार झकझोर-सा दिया है। पर, मैं इसका उत्तर तुम्हें जरूर दूंगा। सुनो, मेरा युवराज याने अमर डेढ लाख रुपये लेकर बम्बई चला गया। वह होटल मे रहता है। खूब शराब पीता है और ऐय्याशी करता है। यही उसकी जिन्दगी है। उसे वहां उसके जैसे ही कुछ दोस्त मिल गए हैं, जो उसे "हीरो" सम्बोधित कर उसे कुप्पा बनाए रखते हैं। मैं स्पष्ट देख रहा हूं कि वह दिन जल्द ही आने वाला है, जब अमर के रुपए समाप्त हो जाएंगे और अमर दर-दर की ठोकरें खाता फिरेगा।"

"और अरुण?"

"अरुण अब सांवरिया की नौकरी कर रहा है।"

"नौकरी और सांवरिया की!"—मनोहर ने विस्मय के साथ पूछा।

"हां।"

"वह कैसे?"

"सांवरिया ने जो जमीन खरीदी है, उस पर निर्माण-कार्य चालू हो गया है। प्रस्तावित भवन की योजना एक बड़े साइन-बोर्ड मे प्रदर्शित कर दी गयी है। वहा बहुमंजिली इमारत बन रही है। इमारत के निचले तल्ले मे बाजार रहेगा। ऊपर के तल्ले मे बैंक, कार्यालय आदि रहेंगे। इस भवन मे भूमिगत गोदाम भी रहेगा। इस काम की देख-रेख के लिए सांवरिया को एक आदमी की जरूरत थी ही। उसने अरुण को ही रख लिया। अरुण को सांवरिया कपड़ा-लत्ता, खाना-पीना सब कुछ देता है। ऊपर से जेब खर्च के लिए उसे पाच सौ रुपये हर महीना भी देता है।"

"तब तो कोई बुरा नही है।"—मनोहर ने अपनी तरफ से बोलते हुए कहा।

"मनोहर, सांवरिया व्यापारी का बच्चा है, यह मत भूलो।"

"इसका क्या अर्थ हुआ?"

"सांवरिया ने अरुण के डेढ लाख रुपये अपने पास रख लिए हैं। उसने अरुण को यह आश्वासन दिया है कि जब बाजार तैयार हो जाएगा तो वह उसे एक दूकान दे देगा और उसकी दूकान खुलवाने मे पूरी-पूरी सहायता भी करेगा। मनोहर, जरा जोड कर देखो कि बैंक की दर से ही डेढ लाख रुपए का हर महीने अरुण को कितना सूद मिल सकता है? यदि उसने इन रुपयों को बैंक मे रखा होता तो उसे प्रति माह डेढ हजार के आस-पास सूद के रूप मे मिल सकते थे। सांवरिया तो उसे कुछ भी नही देता। उल्टे वह अरुण से काम भी ले रहा है और उसके ऊपर एहसान का बोझ भी बढ़ाता जा रहा है।"

"आपने सही कहा है।"—मनोहर अपने को बोलने से नहीं रोक सका।

"मनुष्य को बार-बार यह बताया जाता है कि केवल कर्म पर उसका अधिकार है, अतः उसे अपने मन में फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। पर, संसार में ऐसे मनुष्य कहां नजर आते हैं, जो केवल कर्म ही करते हों और उनके मन में फल की आशा बिलकुल नहीं हो। शायद एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिले। हां, यह जरूर है कि कुछ लोग कर्मवादी होते हैं और कुछ लोग फलवादी। कर्मवादी कर्म को ज्यादा महत्त्व देता है, पर फल की इच्छा उसके मन में बिलकुल ही नहीं होती, ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता। दूसरी ओर फलवादी तो केवल फल की ही आशा करता है, वह प्रयत्न को व्यर्थ मानता है।"

"जी।"—मनोहर सुन रहा था बड़े ध्यान से।

"मैं लेखन करता रहा, करता रहा। मैंने फल की चिंता उतनी नहीं की। शायद यही कारण था कि मैं लिख सका। पर, आज मैं यह जरूर कहना चाहूंगा कि मैंने जितना लिखा और जैसा लिखा, उसके अनुपात में मुझे मेरा प्राप्तव्य नहीं मिल सका जबकि मेरे देखते-ही-देखते राजनीति एवं गुटबाजी की बैसाखी के सहारे छुटभइये कहां-से-कहां पहुंच गए।"

"यह सच है।"—मनोहर की उक्ति थी।

"अपने जीवन-काल में मैं सोचता रहा—चलो, आज ये मेरी रचनाओं का सम्मान नहीं कर रहे हैं तो क्या? शायद मेरे मरने के बाद ही ये मेरी रचनाओं की कीमत समझेंगे। मगर, अपने मरने के बाद मैंने देखा कि लोगों ने मिलकर मेरी तिजारत शुरू कर दी है। यह मैं मानता हूं कि ऐसी तिजारत से मेरी ख्याति फैली है। पर, यह कौन सोचता है कि इससे कृष्णकांत के परिवार का भी थोड़ा भला हो। डॉक्टर सोमनाथ ने "कृष्णकांत स्मृति-ग्रंथ" का प्रकाशन-सम्पादन किया। इसका उन्हें इतना लाभ हुआ कि सेवामुक्त होने के बाद उन्होंने अपना प्रकाशन ही प्रारम्भ कर दिया है। "स्वर" के सम्पादक राघव त्रिवेदी ने "कृष्णकांत की स्मृति में" छाप कर वाह-वाही भी लूट ली और रुपए भी कमा लिए। अब तो वह इस बात की प्रतीक्षा में बैठा है कि हिन्दी का फिर कोई प्रतिष्ठित साहित्यकार मरे और वह वैसी ही एक किताब और प्रकाशित कर वाह-वाही लूटे और रुपए बटोरे। डॉक्टर सोमनाथ तथा राघव त्रिवेदी के प्रकाशनों से मेरी चर्चा तो खूब हुई, पर मुझे और मेरे परिवार को इससे क्या मिला?"

मनोहर दुखी मन से कृष्णकांतजी की बातें सुन रहा था।

"मनोहर, कल ही की बात है। दिल्ली में तेरह फरवरी को एक

प्रकाशक ने मेरी जयन्ती मनायी। गोष्ठी में दिल्ली के कई प्रतिष्ठित साहित्यकार आए। लोगों ने मुझे याद किया, मेरी प्रशंसा की—यह सब सुनकर तो मेरी आत्मा को संतोष जरूर मिला। प्रकाशक के द्वारा यह घोषणा भी की गयी कि वह "कृष्णकांत रचनावली" आठ खण्डों में प्रकाशित करने जा रहा है। इस रचनावली का आगामी तेरह फरवरी को विमोचन किया जाएगा—एक भव्य समारोह में। इसके सम्पादक डॉक्टर ब्रजनन्दन हैं, जो एक विश्वविद्यालय के हिंदी-विभागाध्यक्ष हैं। यह घोषणा तो मुझे बड़ी रुचिकर लगी, पर घोषणा ने मेरे सामने फिर वही सवाल खड़ा कर दिया—इससे मेरे और मेरे परिवार का क्या भला होने वाला है। इस रचनावली का मूल्य लगभग आठ सौ रुपए होगा। इसकी कम-से-कम दो हजार प्रतियां प्रकाशित की जायेंगी। सपादक महोदय दस प्रतिशत की रायल्टी लेंगे ही। दूसरे शब्दों में उन्हें एक लाख साठ हजार रुपए केवल रायल्टी के रूप में प्राप्त होंगे। एक बात और जान लो कि डॉक्टर ब्रजनन्दन ने क्या होशियारी की है।"

"डॉक्टर ब्रजनन्दन ने क्या होशियारी की है?"—मनोहर ने चौंकते हुए पूछा।

"इस आदमी ने स्वयं अमर और अरुण से मुलाकात की। इसे मालूम था कि मेरे बेटे पीने के शौकीन हैं। इसने मेरे दोनों सपूतों के सम्मान में एक कॉकटेल पार्टी का आयोजन किया। जब दोनों पीकर बम हो गए तब डॉ० ब्रजनन्दन ने उन्हें पांच-पांच हजार रुपए थमाकर लिखवा लिया—हम डॉ० ब्रजनन्दन को कृष्णकांत रचनावली के प्रकाशन तथा सम्पादन का अधिकार दे रहे हैं। इस ग्रंथ के प्रथम संस्करण की रायल्टी हमें प्राप्त हो गयी है।—मेरे नालायक बेटे पांच-पांच हजार रुपए पाकर निहाल हो गए। मगर, इन दोनों गदहों को यह जरा भी होश नहीं है कि वास्तव में ऐसा करके उन्होंने बहुत बड़ी भूल की है।"

"सचमुच अमर और अरुण की बुद्धि पर मुझे भी तरस आ रहा है।"—मनोहर ने कहा।

"इस प्रकार मुझे बेचा और खरीदा जा रहा है। मेरी आत्मा यह सोचकर संतोष कर लेती है कि जो चीज बाजार में बेची और खरीदी जाती है, उसका लाभ उसे कभी भी प्राप्त नहीं होता, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नदी अपने पानी से अपनी प्यास नहीं बुझाती और पेड़ अपने फलों को खुद नहीं खा पाते। इन्हें तो उल्टे कष्ट ही झेलने पड़ते हैं। इसी तरह साहित्य की मंडी में मुझ जैसे दिवंगत साहित्यकार की हैसियत एक मुर्गे के समान होती है, जो बेचा जाता है, काटा जाता है और समाप्त हो जाता है। मगर,

उसे अपने जीने के बदले मे कुछ भी नही मिलता।"

मनोहर तल्लीन था सुनने में।

"मनोहर, क्यों तो मुझे बड़ा विश्वास था कि जब मैं मरूंगा, हिंदी की सभी पत्र-पत्रिकाएं मुझ पर खूब लिखेंगी। मुखपृष्ठ पर मेरे चित्र छापे जाएंगे। मेरी जिंदगी के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया जाएगा। मगर, यह देखकर मेरी आत्मा को ठेस लगी कि वैसा कुछ भी नहीं हुआ। दिल्ली के एक साप्ताहिक ने अपने मुखपृष्ठ पर मेरा चित्र जरूर छापा और उसने मुझसे संबंधित सात-आठ पृष्ठों की सामग्री भी प्रकाशित की। इसके अलावा अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने मेरे निधन के समाचार को जरा भी महत्व नही दिया।"

यह सुनकर मनोहर कुछ उदास हो चला था।

"मनोहर, जब मैं जीवित था मैंने किसी का डर नही माना। मैंने जो उचित समझा वह लिखा। अब तो मैं मुक्त हूं। मेरे ऊपर न तो किसी का नियंत्रण है और न कोई मुझे धमका सकता है। आज मेरी आत्मा मे जो तूफान उठ रहा है, उसे मैं रोकूंगा नही। आज मैं खुलकर बोलने जा रहा हूं।"

"बोलिए कृष्णकातजी, बोलिए। आप जरूर बोलिए, मैं बड़े ध्यान से सुन रहा हू आपकी बातें।"—मनोहर ने कहा।

"मैंने अपने जीवन-काल में और मरने के बाद भी देखा है कि हिंदी की पत्र-पत्रिकाएं अपने बड़े-से-बड़े साहित्यकारों का अनादर करती रही हैं। अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओं से कोई क्या शिकायत करे?"

"यह आपने सच कहा है।"—मनोहर बीच मे ही बोल पड़ा।

[illegible]

सुनील गावसकर पर अनेक विशेषांक प्रकाशित किए। जरा तुम्हीं बताओ कि सुनील गावसकर की बल्लेबाजी से तुम्हारे देश की संस्कृति कितनी आगे बढ़ी और तुम्हारे हृदय का कितना विस्तार हो गया? तुमने अमिताभ बच्चन के केवल बीमार हो जाने पर विशेषांक के विशेषांक निकाल दिए, पर क्या तुमने निराला के बीमार होने पर भी कोई ऐसा विशेषांक निकाला

था क्या ? मैं जानता हूं कि तुम्हारे पास इसका कोई जवाब नहीं है। तुम मुखपृष्ठों पर हत्यारों, बलात्कारियों, तस्करों, कुख्यात डकैतों के चित्र तो छाप सकते हो, पर अपने साहित्यकारों के लिए तुम्हारे पास कोई जगह नहीं है। मसीजीवियों के द्वारा मसीजीवियों का किया जा रहा यह अपमान तुम्हें बहुत महंगा पड़ेगा...इस देश को बहुत महंगा पड़ेगा, यह जान लो। नतीजा अब सामने आने भी लगा है।"

मनोहर मंत्रमुग्ध-सा सुनने में लीन था।

"एक साहित्यकार अपने जीवन को साधना की भट्टी में झोंककर स्वाहा कर डालता है, तब जाकर उसे कहीं इस देश का सर्वोच्च सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हो पाता है। अधिकांश अभागों को तो यह सम्मान मिल भी नहीं पाता। इतनी बड़ी उपलब्धि पर भी तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या होती है ? तुम एक कोने में समाचार छापकर संतुष्ट हो लेते हो। लेकिन, हर, दिन, हर सप्ताह, हर महीने आवरण पर अर्द्धनग्न युवतियों की भड़कीली तसवीरें छापने में तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं आती। एक दिन के लिए ये तसवीरें रोक कर उस साहित्यकार की तसवीर नहीं छापी जा सकती जिसे देश का सर्वोच्च सम्मान प्राप्त होता है ? शायद तुम लोगों ने भी यह मान लिया है कि सबसे अधिक सम्मानित व्यक्ति वह है, जो एक फिल्म में काम करने के लिए पैंतीस लाख रुपए लेता है, जो क्रिकेट के खेल में शतक बनाता है, जो एक कतार में दर्जनों लोगों को खड़ा कर गोलियों से भून देता है, जो करोड़ों की हेराफेरी करता है, जो देश में एक वंश की हुकूमत का दिन-रात सपना देखता है, जो नेता जनता को दिन-रात उल्लू बनाते हैं, जो हत्यारे हैं, जो बलात्कारी हैं, जो डाकू हैं, जो तस्कर हैं और जो पवित्र स्थानों में छिप कर निर्दोष महिलाओं, पुरुषों और शिशुओं की हत्याएं करवाते हैं। आज मेरी आत्मा तुमसे यह साफ-साफ कहना चाहती है कि तुम्हारी कसौटी में खोट है। तुम्हें यह कसौटी बदलनी पड़ेगी।"

मनोहर एकाग्र होकर सुनता जा रहा था।

"मुझे यह अच्छी तरह याद है कि मुख्यतः हिंदी तथा भारत की अन्य भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं ने कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी स्वतन्त्रता के पहले। यह कहने में मुझे जरा भी संकोच नहीं कि इन्होंने भारतीय जनता को स्वतंत्रता के वास्तविक महत्त्व से केवल परिचित ही नहीं करवाया था अपितु उन्हें स्वतंत्रता-संग्राम में शरीक होने की भी प्रेरणा दी थी। इसी प्रेरणा का फल था कि यहां की जनता एकजुट होकर अंगरेजों को यहां से भगाने में सफल हो सकी। पर, स्वतंत्रता के पश्चात् लगता है, अपने देश की पत्रकारिता को पक्षाघात हो गया है, जो उसे भीतर-ही-भीतर

खोखला किए दे रहा है। इसने आजादी के बाद लोगों को जो चीजें दी हैं उनके नाम है—गंदी राजनीति, फिल्म, भ्रष्टाचार और क्रिकेट। नतीजा यह है कि आज की पीढ़ी या तो फिल्म की बात करती है या क्रिकेट की। यह पीढ़ी राजनीति की बातें करती है या भ्रष्टाचार की जिसमें हत्या, बलात्कार, डकैती आदि सभी शामिल हैं। इस पीढ़ी को विवेकहीन एवं नपुंसक बनाने में देश की पत्र-पत्रिकाओं ने जो गहरी दिलचस्पी दिखलाई है, वह शोचनीय और निंदनीय है। आज की पीढ़ी तो अपने देश का नाम भी नहीं जानती। उसके मुंह पर 'इंडिया' तो रहता है, पर वह 'भारत' नहीं बोल सकती। देश क्या होता है, देशभक्ति क्या होती है, राष्ट्रीय स्वाभिमान क्या होता है—इन चीजों के बारे में यह पीढ़ी कुछ जानती ही नहीं। यह सब कौन समझाएगा इन्हें ?"

मनोहर तल्लीन था सुनने में।

"जो पत्रकार स्वयं अपने लक्ष्य को भूल चुके हैं, जो स्वयं अपनी गौरवशाली परंपरा को विस्मृत कर चुके हैं, उनसे यह आशा करना व्यर्थ है कि वे साहित्यकारों के बल पर पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित कर भी साहित्यकारों को समुचित सम्मान देंगे। वे मलखान की सचित्र जीवनी छापें, वे फूलनदेवी पर विशेषांक निकालें, वे रंगा और बिल्ला की तसवीरें छापें, वे युवराजों की प्रशस्ति लिखें, वे फर्जी संस्थान चलाने वालों को चर्चित बनाए रखें, वे भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के साक्षात्कार छापें, वे हाजी मस्तान का गुण-गान करें, वे अभिनेता-अभिनेत्रियों की प्रेम कहानियां छापें, वे क्रिकेट के खिलाड़ियों के लिए क्रिकेट अंक निकालें; क्योंकि ये लोग ही तो नए भारत के नए इतिहास का निर्माण कर रहे हैं।"

मनोहर एकाग्रचित्त श्रोता बना हुआ था।

"इस पीढ़ी को यह कंठस्थ है कि किस खिलाड़ी ने कब-कब शतक बनाए थे, पर क्या किसी युवक को यह भी याद है कि प्रेमचंद या शरत्चंद्र ने कितने उपन्यास लिखे हैं ? न याद है और न याद रखने की जरूरत है। कहते हैं, कोई देश कितना महान् है, इसका अंदाज इस बात से लगाया जाता है कि उसका साहित्य कैसा है। निश्चय ही अपने देश की साहित्यिक परंपरा अत्यन्त गौरवमयी एवं समृद्ध रही है। दुनिया भारत की इज्जत आज भी इसी विशेषता के कारण करती है। लेकिन, सवाल यह है कि जो साहित्य रचते आ रहे हैं, उनका क्या हाल है ? वे इस देश में गरीब थे, गरीब हैं और शायद गरीब ही रहेंगे। इन्हें भूखों तड़पाकर कोई राष्ट्र खुशहाल नहीं हो सकता, मनोहर, मेरी आत्मा की यह आवाज तुम सुन लो।"

अपना नाम सुनते ही मनोहर चौंक पड़ा। उसने अचानक कहा—"जी, यह सच है।"

"हिंदी के कथित सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक ने मेरे निधन का समाचार एक कोने में छापकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर दी थी। इस साप्ताहिक को मैं वर्षों से सहयोग देता चला आ रहा था। परन्तु, इसके सम्पादक ने मेरी घोर उपेक्षा की। उसकी इस उपेक्षा से मेरी आत्मा पीड़ित हो उठी। उसी अंक के मुखपृष्ठ पर उसके सम्पादक ने रंगा और बिल्ला का रंगीन चित्र प्रकाशित किया पूरे पृष्ठ पर। अपराधकर्मियों की महत्ता और साहित्यकार की उपेक्षा—यह देखकर मेरी आत्मा पर क्या बीती होगी, तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। इस अंक को देखकर लगा था कि मेरी साहित्य-साधना बेकार हो गई। मेरी आत्मा ने मुझे धिक्कारा—अरे कृष्णकांत, तूने व्यर्थ ही साहित्य-सेवा में अपने और अपने परिवार को होम कर दिया। यदि तेरे मन में चर्चित होने की ही इच्छा थी तो इसके लिए साहित्य-सेवा की क्या जरूरत थी? तू यदि रंगा और बिल्ला की तरह किसी कम उम्र बालिका के साथ बलात्कार करता और फिर तू उसकी हत्या करता, तो आज तेरा नाम देश के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर होता और तेरा रंगीन चित्र हिंदी का यह सर्वश्रेष्ठ कहा जाने वाला साप्ताहिक बड़े चाव के साथ छापता। मनोहर, लगता है कि आज सारे देश ने यह स्वीकार कर लिया है कि सम्मान केवल उसे ही देना है, जो गलत रास्ते अपनाता है, यदि ऐसी बात नहीं होती तो पत्र-पत्रिकाओं के आवरण-पृष्ठों पर केवल भ्रष्ट नेताओं, डाकुओं, फिल्मी अभिनेता-अभिनेत्रियों, तस्करों, अर्द्धनग्न युवतियों आदि के ही चित्र नहीं छापे जाते। ऐसा प्रतीत होता है कि इस देश के साहित्यकारों, कलाकारों, चितकों, तथा समाज के वास्तविक समुद्धारकों के खिलाफ कोई अलिखित षड्यंत्र चलाया जा रहा है, इन्हें उपेक्षित रखने का, इन्हें अपमानित करने का ताकि यह वर्ग नपुंसक हो जाय और अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाय। यदि वास्तव में ऐसा कोई षड्यंत्र चलाया जा रहा है, जैसा कि मैं मानता हूं, तो मेरी आत्मा आज यह घोषणा करना चाहती है कि जब-जब किसी शक्ति ने लेखनी को इस प्रकार दबाना चाहा है, वह शक्ति स्वयं नेस्तनाबूद हो गई है। इतिहास इसका साक्षी है। यह कृतघ्न देश आज कलम की जय बोले या न बोले, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। कलम तो अपना काम हर युग में करती आई है, कर रही है और आने वाले युगों में भी करती रहेगी।"

मनोहर की दोनों आंखें बंद थीं और वह कृष्णकांतजी की बातें सुनने में तल्लीन था।

"वाल्मीकि, तुलसीदास, कबीर, शेक्सपीयर, गेटे, प्रेमचद,

शरत्‌चंद्र आदि ये केवल व्यक्तियों के नाम नहीं हैं। कृष्णकांत एक व्यक्ति ही नहीं था। ये सारे नाम एक परंपरा के हैं। एक ऐसी परंपरा, जो कभी मरती नहीं, जो कभी टूटती नहीं—यह तो अबाध गति से निरन्तर चलती ही रहती है, बढ़ती ही रहती है। इस धारा को जिस किसी ने भी मोड़ने की कोशिश की, वह स्वयं तुड़-मुड़ गया। मनोहर, आज मैं तुम्हें एक ऐसी बात बताने जा रहा हूं, जिसकी जानकारी किसी को नहीं।"

"कौन-सी बात?"—मनोहर ने उत्सुकता के साथ पूछा।

"मनोहर, मेरा शरीर चिता पर जल रहा था। जलती चिता के सामने एक युवक आया। वह मेरे पैरों की ओर झुक कर जमीन पर बैठ गया। उसके दोनों हाथ जुड़े हुए थे। वह मन-ही-मन एक संकल्प कर रहा था—कृष्णकांतजी, आज आपके निधन के कारण लोग आपस में यह बातें कर रहे हैं कि आपके देहावसान के कारण साहित्यिक मानचित्र से इस नगर का नाम अब मिट जाएगा। इस नगर की साहित्यिक परंपरा आज समाप्त हो गई। लेकिन, आप ऐसा नहीं मानें। मैं आपकी चिता के समक्ष यह शपथ लेता हूं कि ऐसा कभी नहीं होगा। यह मैं अच्छी तरह जानता हूं कि इस देश में एक ईमानदार साहित्यकार होने का अर्थ है—जीवन भर तलवार की धार पर चलने का खतरा मोल लेना, घोर निर्धनता के बीच जीवन बिताने के लिए तैयार रहना। साहित्यकार बनने की इन कड़ी शर्तों को जानते हुए भी आज आपकी चिता की अग्नि को साक्षी बनाकर मैं यह शपथ ले रहा हूं कि साहित्यिक मानचित्र से इस नगर का नाम कभी नहीं मिटेगा और आपने जो साहित्यिक मशाल जलाई है—वह निर्बाध एवं निष्कम्प गति से सदा प्रज्वलित होती रहेगी। वह मशाल कभी नहीं बुझेगी। आप यह जान लें कि वह मशाल मैंने आज अपने हाथ में थाम ली है।"

"कृष्णकांतजी, कौन है वह युवक?"—मनोहर ने कौतूहल के साथ पूछा।

"वह युवक कौन है, यह तुम्हें बताने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम उसे जानते हो। उसके बारे में मैं इतना ही बोल सकता हूं कि उसने जो संकल्प किया था, उसके निर्वाह में वह ईमानदारी के साथ जुट गया है।"

"अब मैं समझ गया।"—मनोहर ने हंसते हुए कहा।

"अब मेरी आत्मा को कोई मलाल नहीं है। मेरी आत्मा को इसका भी कष्ट नहीं है कि मेरे लिए लोगों ने कुछ वैसा नहीं किया, जैसा कि किया जाना चाहिए था। जब लोगों ने प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, निराला आदि के लिए कुछ नहीं किया तो कृष्णकांत की परवाह कौन करता? परंतु, लोगों को यह गलतफहमी नहीं होनी चाहिए कि उपेक्षा करके साहित्य एवं

साहित्यकारों को खत्म भी किया जा सकता है। एक कृष्णकांत मर गया और उसकी चिता के सामने ही दूसरे कृष्णकांत ने जन्म ले लिया। वह कृष्णकांत जाएगा फिर तीसरा कृष्णकात आएगा, तीसरा जाएगा चौथा कृष्णकांत पैदा होगा, चौथा जाएगा पांचवां आएगा, पांचवां जाएगा छठा आएगा···इस प्रकार यह साहित्य-प्रवाह निर्बाध गति से बहता ही रहेगा··· बहता ही रहेगा···इसे कोई रोक नहीं सकेगा···इसके ऊपर युग की वर्जनाओं तथा उपेक्षाओं का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा···"

मनोहर का टेप रेकार्डर अचानक एक आवाज के साथ बंद हो गया। उसने सिर उठाकर पेड़ की तरफ देखा। मनोहर को लगा कि पीपल की पत्तियों में एक हलचल-सी पैदा हो गई और उन पत्तियों के बीच से कोई अदृश्य वस्तु तेजी से निकलकर आकाश में विलीन हो गई।

०००

मुद्रक : राधिका प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 58122